ब्रह्मचर्य के साधन

भाग १ से ५ तक

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

ब्रह्मचर्य के साधन

[प्रथम भाग]

प्रातः जागरण

ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ, जो भी जीवन में उन्नति करना चाहता है उसे सबसे पूर्व प्रातः उठने का ही अभ्यास करना चाहिए।

मनु महराज ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर आवश्यक कर्त्तव्य कर्म करने का इस प्रकार विधान किया है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ।।

मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ९२

ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। अपने शरीर के क्लेशों और उनके कारणों पर विचार करना चाहिए और वेद के तत्त्वों का अध्ययन करना चाहिए।

एक अन्य स्थान पर भी ऐसा ही लिखा है:—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ।।

आयु की रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठे और शरीर की चिन्ताओं को छोड़कर, शौच स्नानादि करके स्वस्थचित्त होकर ईश्वर का ध्यान आदि नित्य कर्मों को करे। प्रातःकाल उठने से मनुष्य स्वस्थ रहता है, उसको रोग नहीं होते, अतः निरोग

शरीर अधिक वर्षों तक कार्य कर सकता है। प्रातःकाल उठने के असंख्य लाभ शास्त्रकारों ने बतलाये हैं।

गोभिल गृह्यसूत्र में भी इसी प्रकार का विधान हैं:—

"प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा०"

प्रति-दिन रात्रि के चौथे प्रहर में जाग। महर्षि दयानन्द जीं भी इस विषय में संस्कार विधि में लिखते हैं–

सदा स्त्री-पुरुष दस बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर वा ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार करनां और धर्म अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त काम न छोड़ना चाहिए, किन्तु सदा निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वरोपासना भी करनी कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके।"

(सं० वि० गृहाश्रमप्रकरण)।

इसलिए प्रातः उठते ही सर्वप्रथम निम्न मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए:—

(ओम्) प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

(ओ३म्) प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

(ओ३म्) भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

(ओ३म्) उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
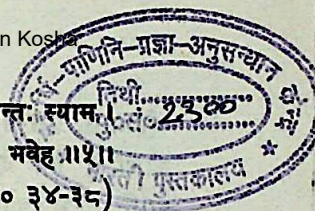
(ओ३म्) भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥
(यजुर्वेद अ० ३४ म० ३४-३८)

इन मन्त्रों का अर्थ विचारपूर्वक जप करने से अधिक लाभ होता है। इनका अर्थ महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण में देख लेवें। बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये आदि सृष्टि से प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठने का विधान है। बाल्मीकि रामायण इसमें प्रमाण है—

एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिबुध्य सः।
अलङ्कारविधिं कृत्स्नं कारयामास वेश्मनः ॥५॥

(बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड षष्ठ सर्ग)

(राम और सीता) जब पहर रात शेष रही तब वे उठे और नौकर चाकरों को सारे भवन को साफ कर सजाने की आज्ञा दी ॥५॥

रात्री के पश्चिमयाम वा चौथे पहर का नाम ब्राह्ममुहूर्त्त है। शास्त्रकारों ने इसी समय को अमृतवेला वा देववेला भी कहा है। यह ब्रह्म का अर्थात् "देवंदेवत्रा" देवों के देव महादेव जिसका मुख्य और निज नाम 'ओ३म्' है, के स्मरण करने का सर्वश्रेष्ठ समय है। देव विद्वान् लोग इस मुहूर्त्त में ब्रह्म की भक्ति व भजन में रत रहते हैं और उस समय प्रेममय प्रभु अपने सच्चे श्रद्धालु भक्तों पर आनन्द अमृत की वर्षा करते हैं। सभी मनुष्य पर्याप्त समय सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा में सब सांसारिक वासनाओं से सर्वथा दूर रहते हैं। चित्त की सब वृत्तियां उस समय निरुद्ध अवस्था में रहती हैं। इसी कारण हमारा आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होने से सर्वथा शान्त होता है। प्रकृति भी सर्वथा शान्त होती है। अथवा यों कहिये उस समय सर्वत्र सुन्दरता,

सौम्यता, प्रसन्नता और शांति का साम्राज्य होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवपूजा अर्थात् ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि शुभ कार्यों के लिए ही ईश्वर ने इस उत्तम समय की रचना की है। इस समय स्वभाव से ही पापी से पापी मनुष्य का भी ईशभक्ति आदि शुभ कार्यों में मन लगता है। असुरों में भी इस समय आसुरी वृत्ति का लोप हो जाता है। राक्षसों में भी देवता बनने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है। इसीलिए पशु पक्षी आदि सभी प्राणी स्वभाव से प्रातः ही उठ जाते हैं। नवजात बालक भी स्वयमेव प्रातः उठकर हमें यह शिक्षा देता है कि प्रभु का यह पवित्र समय प्रमाद में पड़कर सोने का नहीं है। हम यह भी नहीं देखते कि पक्षीगण पेड़ों की शाखाओं पर अपने पंख फैलाकर प्रतिदिन अपने प्रियतम प्रभु के प्रेम में गद्गद् होकर कितने मधुर स्वर से गीत गाते हैं। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि रात-दिन के चौबीस घण्टे में केवल एक बार आने वाला यह प्रातःकाल का सर्वोत्तम समय ब्रह्मवन्दना के लिए ही आता है। देव (विद्वान्) लोग एकाग्रचित्त हो इस समय प्रभु के आनन्द अमृत का पान करते हैं। इस भाव को एक कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा है—

"भोर भयो पक्षीगण बोले, उठो जन प्रभु गुण गाओ रे।
लखो प्रभात प्रकृति की शोभा, बार बार हर्षाओ रे॥"

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम्॥

प्रातःकाल की सन्ध्या जब तक नक्षत्र आकाश में रहें विधिपूर्वक करे, और जब तक सूर्य का दर्शन न हो गायत्री का अभ्यास (जप) करता रहे। "पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः" (सूर्य उदय से पूर्व ईश्वर का ध्यान करना चाहिए) महाभाष्य २।३।६६। का
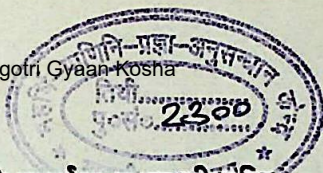
"न लोकाव्यय०"सूत्र पर आया वाक्य भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। सभी शास्त्रों में ऋषि-महर्षि लोगों का यही एक मत है कि ब्राह्ममुहूर्त्त से बढ़कर ईश्वरभक्ति के लिए अन्य पवित्र समय नहीं है। इसलिए मनु महाराज भी लिखते हैं—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥

(मनु० अ० २२ श्लोक १०१)

अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या को गायत्री का जप करता हुआ सूर्य दर्शन होने तक स्थित होकर और सायंकाल की संध्या को नक्षत्र दर्शन ठीक ठीक होने तक बैठकर करे।

इसलिए प्राचीन काल में सभी भारतवासी इस पवित्र ब्राह्म-मुहूर्त्त में ईश्वरचिन्तन, ब्रह्मार्चना, योगाभ्यास ही करते थे। इस अमृतवेला का सदुपयोग करने के कारण ही प्राचीन ऋषि महर्षि गण अमरपद (मोक्ष) की प्राप्ति करते थे। इसीलिए आज तक उनके यश और कीर्ति के गीत गाये जाते हैं। जो प्रतिदिन बहुत प्रातः उठकर श्रद्धापूर्वक ईश्वर को ध्यायेगा वह देवमार्ग का पथिक बनकर मोक्षपद को पायेगा। क्योंकि ब्राह्ममुहूर्त्त का समय इतना अच्छा होता है कि इस समय यम नियमों की स्वयं सिद्धि होती है। परस्पर का व्यवहार न होने से हिंसा करने या असत्य बोलने का अवसर ही नहीं आता। स्वभाव से अहिंसा और सत्य का प्रसार होता है। चोर भी अपनी चोरी से निवृत्त होकर इससे पूर्व ही अपने स्थान पर चले जाते हैं। कामी पुरुष भी रात्री में बहुत देर से सोने के कारण इस समय आलस्य प्रमाद में पड़े सोते व मक्खी मच्छर मारते रहते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि यम नियमों का स्वयं वातावरण

होने से यह योगाभ्यास, ईश्वरभक्ति का सर्वोत्तम समय है। किसी कवि ने ठीक कहा है—

अमृत वेला जाग, पवित्र, होकर आसन ले जमा।
ईश्वर के गुण धारण करके, समीप दिन दिन होता जा॥
प्रीति प्राणाधार की अपना रङ्ग जमायेगी॥
भक्ति कर भगवान् की, काम तेरे जो आयेगी।
पाप भरी जो आत्मा निश दिन धुलती जायेगी॥

इसी प्रकार इसी भाव को एक अन्य कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है—

भगवान् भजन करने को जो प्रातः समय उठ जाता है।
आनन्द की वर्षा होती है दुनियां में वो सुख पाता है॥

राष्ट्रपिता गान्धी जी का जो प्यारा भजन है, उसमें भी इसी प्रकार के भाव भरे हैं—

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।
टुक नींद से अंखिया खोल जरा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है॥ उठ जाग०

हमारे प्राचीन पुरुष प्रातःकाल उठने के महत्त्व को पूर्णतया समझते थे और सभी ब्राह्ममुहूर्त में उठने के पूरे अभ्यासी थे। वे मनु जी के आदेशानुसार इस समय में शौच, दन्तधावन, स्नान, व्यायाम और वायुसेवन आदि नित्य कर्मों के द्वारा शरीर को इतना सुन्दर, सुदृढ़ और स्वस्थ बना लेते थे कि काया के क्लेश अर्थात् शारीरिक रोग और उनके कारण स्वयं समूल नष्ट हो जाते थे। आयुभर रोग उनको छूते तक न थे। इसके अतिरिक्त वेदों के तत्त्वों के अध्ययन, प्राणायाम, योगाभ्यास और ईश्वरचिन्तन के द्वारा मानसिक और आत्मिक काम क्रोध

आदि शत्रुओं को भस्मसात् कर डालते थे। आज हम अपने ऋषि महर्षियों के मार्ग को छोड़कर सर्वथा उलटे चल रहे हैं। हमारे सब दुःखों का यही कारण है। यह जानते हुए भी कि जो लोग सोये पड़े रहते हैं वे आलसी, रोगी, अल्पायु, हठी, दरीद्री, दुराचारी, विषयी तथा अनेक दुर्गुणों के भण्डार होते हैं। उनके स्वास्थ्य और सदाचार का तो दिवाला ही निकल जाता है। प्रातःकाल का यह पवित्र समय जिस का वायु अत्यन्त शुद्ध और संजीवनी शक्ति से भरा हुआ होता है, हम उससे कुछ भी लाभ न उठाकर खटिया से पड़े-पड़े यों ही खो देते हैं और अपने पुरुषाओं को लजाते हैं। क्योंकि प्रातःकाल उठनेवाले स्त्री-पुरुष पूर्ण स्वस्थ भाग्यवान् और बुद्धिमान् होते हैं। जैसे अंग्रेजी में भी कहावत है:—

"Early to bed and early to rise makes a man healthy wealthy and wise."

किन्तु आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू और स्कूल, कालिज के विद्यार्थी इससे सर्वथा विपरीत करते हैं। देर से सोना और देर से उठना अपना धर्म समझते हैं। रात्रि को देर तक व्यर्थ की गप्प-शप्प मारते और सिनेमा, नाच आदि देखते रहते हैं और परीक्षा के दिनों में पढ़ने के लिए देर तक जागते रहते हैं और फिर सूर्योदय के बहुत पीछे तक सोये पड़े रहते हैं। क्योंकि देर से सोनेवाला और देर से उठनेवाला मनुष्य कभी भी बुद्धिमान्, स्वस्थ, ब्रह्मचारी और भाग्यवान् नहीं हो सकता। वेद भगवान् ने कितना अच्छा कहा है :—

उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे ॥ अ.७-१३-२

जो सूर्य उदय के पश्चात् अथवा दिन में सोता है उस सोने वाले के तेज को उदय होता हुआ सूर्य हर लेता है, जैसे अपने शत्रुओं के तेज को एक तेजस्वी पुरुष ले लेता है।

तेज वा वर्चस् उस शक्ति वा गुण का नाम है जिसके कारण मनुष्य सब प्रकार की उन्नति करता है। तेज तत्त्व का स्वभाव ही आगे बढ़ना है। हम थोड़े से आलस्य के कारण केवल प्रातः काल न उठकर उन्नति के मूलतत्त्व को खोकर सर्वथा तेजहीन हो रहे हैं। कितने दुःख और मूर्खता की बात है कि प्रातःकाल का समय दिन का मूल वा बाल्यावस्था है। जैसे बाल्यकाल में अच्छे वा बुरे जैसे भी संस्कार डाल दिये जाते हैं उनका प्रभाव मरण पर्यन्त रहता है। संस्कारों की छाप अटल और अमिट है जो प्रातःकाल की अमूल्य अमृत-वेला को नष्ट कर देता है उस का सम्पूर्ण दिन ही नष्ट हो जाता है। जैसे प्रातःकाल बीतेगा वैसे ही सम्पूर्ण दिन की गति होगी। अंग्रेजी भाषा की लोकोक्ति भी है:—

"Well begun is half done,"

प्रातःकाल का पिछड़ा हुआ मनुष्य सायंकाल तक पिछड़ा ही रहता है। उसकी दिनचर्या सब बिगड़ जाती है। उसका कोई काम समय पर नहीं होता। वह अपने सुधार के लिए प्रतिदिन आने वाले एक नये शुभ अवसर को खो देता है। प्रातःकाल उठने के लिए हमें वेद मंत्र कैसी आश्चर्यंयुक्त चेतावनी देता है—

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्, अपप्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥

(ऋग्० १।११३। १६॥)

शब्दार्थः—हे मनुष्यो! (उदीर्ध्वम्) उठो जागो (नः) हमारे लिए (जीवः) जीवन (असुः) प्राणशक्ति (आगात्) आगया है, उदय होगया है। (तमः) अन्धकार (अप प्रागात्) हट गया है, भाग गया है (ज्योतिः) उषा की ज्योति (आ एति) आ रही है (सूर्याय) सूर्य के (पन्थां) मार्ग को (यातवे) चलने पहुँचने के
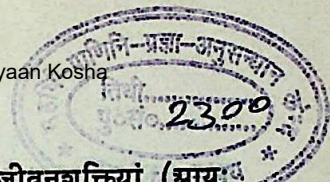
लिए (आरैक्) खोल दिया है (यत्र) जहां जीवनशक्तियां (आयुः प्रतिरन्तः) जीवन को बढ़ाती हैं उस अवस्था में हम (आ अगन्म) पहुँच गये हैं।

भावार्थ—मनुष्य के लिए प्रातःकाल उषा की ज्योति उठने के लिए अन्तिम चेतावनी है वह मनुष्य को सावधान करती है हे मनुष्य ! उठ यह जीवनशक्ति के संचय का समय है। प्राणायाम के द्वारा प्राणों का उदय (संचार) इसी समय किया जाता है। इस समय का भागता हुआ अंधकार हमें अन्दर के अन्धकार को मिटाने के लिये सचेत कर रहा है। यह प्रभात का प्रकाश सूर्य के आने की सूचना दे रहा है और हमें बार बार कह रहा है, ऐ मनुष्य ! उठ यह सोने का समय नहीं है। इस समय का जो सोना है अपने सर्वस्व का खोना है। यही तो समय है जागनेवाले मनुष्य के अन्दर उषा का प्रकाश और उदय होते हुए सूर्य की शक्तियाँ नव प्राण का संचार करके दीव्य-ज्योति का उदय करती हैं और सोने वाले व्यक्ति के आरोग्य स्वास्थ्य, बल, बुद्धि, तेज को हर के निर्बल, दरिद्र, निर्बुद्धि और अल्पायु बनाती हैं। "ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी" ब्राह्ममुहूर्त्त में सोना सब पुण्यों अर्थात् शुभ कार्यों का क्षय (नाश) करनेवाला होता है।

ऐतरेय ब्राह्मण में एक प्रश्न आया है—

"किम् पुण्यम् ? ब्रह्मचर्यम्।" अर्थात् संसार में सब पुण्यों का पुण्य ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के प्रेमी की यदि आप परीक्षा करना चाहें तो आप प्रातःकाल जाकर देखें वह चार बजे से पीछे कभी सोता हुआ न मिलेगा। प्रातःकाकाल चार बजे के पीछे सोने वाला मनुष्य कभी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। क्योंकि स्वप्नदोषादि रोग इस समय सोते रहने से जो मल-मूत्र से मलाशय और मूत्राशय भरे हुए होते हैं उनका वीर्यकोष पर दबाव पड़ता है और उसी से

वीर्य नष्ट हो जाता है और गन्दे स्वप्न भी चार बजे के पीछे ही आते हैं, जो स्वप्नदोष का कारण बनते हैं। किन्तु प्रातःकाल चार बजे से पूर्व मनुष्य तभी उठ सकता है जब सायंकाल १० बजे से पूर्व सो जाये। इसलिए ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचर्य प्रेमियों को १० बजे से पूर्व सोने का और चार बजे से पूर्व उठने का अभ्यास डालना चाहिए।

प्राचीन काल में इस पवित्र देश में जितने भी पूज्य ऋषि महर्षि हुए हैं वे सभी प्रातःकाल उठनेवाले ही थे, इसमें तो किसको सन्देह हो सकता है। किन्तु आधुनिककाल में भी संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, जिस किसी ने देश, जाति, धर्म के लिए कोई भी सेवा का बड़ा कार्य किया है वे सब ही प्रातःकाल उठने के अभ्यासी थे। महर्षि दयानन्द सदैव बहुत प्रातः उठते थे। महात्मा गान्धी जी को प्रातःकाल उठने का अभ्यास था। नेपोलियन आदि महापुरुष जो पाश्चात्य देशों में हुए हैं वे भी सब प्रातःकाल उठने के अभ्यासी थे। प्रातः उठनेवाले महापुरुषों के नाम की सूची कुछ वर्ष पूर्व आङ्गल भाषा की प्रसिद्ध पत्रिका Modern Review में छपी थी।

प्रातः उठने की बात छोटी-सी दिखाई देती है, किन्तु इसका महत्त्व और फल बड़ा भारी है इसका अभ्यास पर्याप्त परिश्रम के पीछे पक्का होता है। सदैव निरन्तर नियम से प्रातः उठनेवाले व्यक्ति बहुत थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं। किन्तु महापुरुष बनने वाले ऐसे ही व्यक्ति होते हैं। जैसे वृक्ष और भवन (मकान) की जड़ और नींव भूमि में छुपी रहती हैं, साधारणतया देखनेवाले को इसका कोई महत्त्व नहीं प्रतीत होता, किन्तु मूल के अभाव में वृक्ष और नींव (बुनियाद) के बिना भवन टिक नहीं सकते। इसी प्रकार प्रातः उठने का गुण छोटा-सा दिखाई देता है किन्तु

यह अपने धारण करनेवाले के जीवन को उच्च, पवित्र और महान् बना देता है। इतने पर ऐसे भारी लाभप्रद गुण को कोई धारण न करे तो उससे बढ़कर अभागा और कौन हो सकता है। इस महत्त्व को प्रकट करनेवाली महर्षि दयानन्द जी के जीवन की एक घटना आती है। घटना इस प्रकार है—

एक दिन एक पादरी और एक मिशनरी महिला महाराज से मिलने आये। उनसे महाराज ने कहा कि धन की अधिकता जाति की अवनति का कारण हुआ करती है जैसा कि वह आर्य जाति के अध:पतन का कारण हुई और उदाहरण रूप से कहा कि इसी कारण से अंग्रेजों की दिनचर्या बिगड़ती जाती है। पहले हम जब सूर्योदय से पूर्व भ्रमण करने जाया करते थे तो बहुत से अंग्रेज स्त्री पुरुषों को वायुसेवन करते देखते थे, परन्तु अब वह बहुत दिन गए उठते हैं। इसलिए अब इनका राज्य नहीं रहेगा।

प्रात:काल न उठनेवाला मनुष्य स्वास्थ्य, आयु, बल, ब्रह्मचर्य, राज-काज सब कुछ खो बैठता है। अत: प्रत्येक ब्रह्मचर्य प्रेमी तथा उन्नति चाहनेवाले स्त्री-पुरुष को प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्त्त में ही उठना चाहिए।
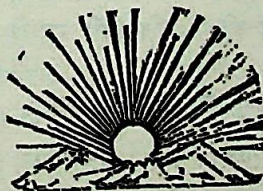
ब्रह्मचर्य के साधन

[द्वितीय भाग]

(चक्षु:स्नान, उष:पान और शौच आदि)

१—चक्षु:स्नान

प्रात:काल उठकर ईश्वरचिन्तन के पश्चात् चक्षु:स्नान करना चाहिए। जिसका विधि निम्न प्रकार से है:—

शुद्ध जल जो ताजा और वस्त्र से छना हुआ हो, लेकर इस से मुख को इतना भरलो कि उसमें और जल न आ सके अर्थात् पूरा भरलो। इस जल को मुख में ही रखना है साथ ही दूसरे शुद्ध जल से दोनों आंखों में बार-बार छींटे दो जिससे रात्रि में शयन समय जो मल अथवा उष्णता आंखों में आजाती है वह सर्वथा दूर हो जाये। इस प्रकार इस क्रिया से अन्दर और वाहर दोनों ओर से चक्षु इन्द्रिय को ठंडक पहुँचती है। निरर्थक मल और उष्णता दूर होकर दृष्टि बढ़ती है। इस क्रिया को प्रतिदिन करना चाहिए।

यह क्रिया आंखों की ज्योति के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इसको प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करने से नेत्रों के सब रोग दूर होकर वृद्धावस्था तक आंखों की ज्योति बनी रहती है।

२—उष:पान

इसके पश्चात् उष:पान करें। प्रात:काल ४ वजे के पश्चात् जो जल शौच (मल,मूत्र त्याग) से पूर्व पिया जाता है उसे उष:पान कहते हैं।

उष:पान से पूर्व भली भांति कुल्ली करके मुख नासिका आदि को साफ करना आवश्यक है। पहले दांतों को अगुली से भली भांति रगड़ कर दो तीन बार कुल्ला करें। फिर अंगूठे या उंगली से रगड़ कर जीभ का तथा गले में नीचे ऊपर तथा दायें बायें लगा हुआ कफ आदि मल भली-भांति साफ कर डालें। नासिका के दोनों छिद्रों को भी जल से शुद्ध करलें। यदि नासिका और मुख को भली भांति शुद्ध किये बिना उष-पान (जलपान) किया जायेगा तो रात्रि में शयन काल में हमारे उदर से जो मल मुख के द्वारा बाहर निकलने के लिए आता है वह जल के साथ पुन: पेट में पहुँच कर गड़बड़ी करेगा।

उष:पान के प्रकार

उष:पान दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम नासिका द्वारा, दूसरा मुख के द्वारा। लाभ दोनों से ही होता है। पहले मुख द्वारा ही जल पीने का अभ्यास करना चाहिए। शनै: शनै: नासिका के द्वारा भी जल पीने का अभ्यास कर सकते हैं। किन्तु यदि नासिका से पीना हो तो बांयीं नासिका से धीरे-धीरे थोड़ा जल अन्दर जाने दें। इस जल को मुंह से थूक दें। इस प्रकार नासिका को शुद्ध करके नासिका से जल पीना चाहिए।

नासिका द्वारा जल पीने की विधि इस प्रकार है—

गिलास में या किसी जलपात्र में जिसके किनारे पतले हों जल भर सुविधा पूर्वक बैठकर गिलास का किनारा बायें नथुने (नाक) से लगाकर धीरे-धीरे जल अन्दर जाने दें। कण्ठ से घूंट खींचता जाये जल स्वयं ही भीतर जाने लगेगा। जलको श्वास की सहायता से न खीचें। बलपूर्वक यह क्रिया करने से जल का ठसका लग सकता है। आरम्भ में कुछ कष्ट होता है, किसी के तो आंखों में आंसू भी आ जाते हैं। कुछ झनझनाहट सी उत्पन्न होती

वा थोड़ा-सा प्रतिश्याय (जुकाम) भी प्रतीत होता है। किन्तु इससे घबराना नहीं चाहिए। पहिले दिन एक या दो तोला जल पीयें, फिर धीरे-धीरे बढ़ाते जावें। भावप्रकाश में २४ (चौवीस) तोले जल पीना लिखा है किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार न्यून वा अधिक कर सकता है। किसी-किसी को वायु के कारण डकारें बहुत आती हैं। क्योंकि जल के साथ पेट में वायु भी जाती है। इससे घबराना नहीं चाहिए। दाईं नासिका से जल पीने से हानि कोई नहीं होती। बायें नथुने का चन्द्रस्वर होने से शीतलता और शांति रहती है। किसी को नासिका से जल पीने से कष्ट होता है तो मुख से हो पीता रहे।

जल पीकर मूत्रत्याग (लघुशंका) करें। यह सदैव ध्यान रखें कि प्रत्येक अवस्था में मल मूत्र त्याग से पूर्व ही उषःपान करना आवश्यक है। जल मीठा और शुद्ध होना चाहिए। कूयें का ताजा जल सदैव अच्छा रहता है। उष्णकाल में सायंकाल का रखा हुआ पर्युषित (बासी) शुद्ध जल भी अच्छा रहता है। बहुत ठण्डा और गरम पानी हानि करता है जिनको मलबन्ध (कब्ज) रहता हो वे सायंकाल तांवे के पात्र में जल रख दें और प्रातः उसका पान करें।

उषःपान के लाभ

उषःपान के अनेक लाभ आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखे हैं। धन्वन्तरि संहिता में लिखा है—

सवितुः समुदयकाले प्रसृतिः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥

जो मनुष्य सूर्योदय से कुछ पहले आठ अञ्जलि जल पीता है रोग और बुढ़ापा उसके पास नहीं आते। वह सदैव स्वस्थ

और युवा रहता है। उसकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक होती है। भावप्रकाश में लिखा है—

अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः ।
मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः ॥
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः ।
तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥

बवासीर, सूजन, संग्रहणी ज्वर, पेट के अन्य रोग, बुढ़ापा, कुष्ठ, मेदरोग अर्थात् बहुत मोटा होना, पेशाब का रुकना, रक्त-पित्त, आंख, कान, नासिका, सिर, कमर, गले इत्यादि के सब शूल (पीड़ा), तथा वात, पित्त, कफ और व्रण (फोड़े) इत्यादि होने वाले अन्य सभी रोग उषःपान से दूर होते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर लिखा है—

पातव्यं नासया नीरं प्रसृतित्रयमात्रया ।
व्यङ्गवलिपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथहरम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिसञ्जनम् ॥

नासिका द्वारा प्रतिदिन शुद्ध जल की तीन घूंट वा अञ्जलि प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में पीनी चाहियें। क्योंकि इससे विकलाङ्ग, झुरियां पड़ना, बुढ़ापा, बालों का सफेद होना, पीनस नाक का सड़ना वा नासिका में कीड़े पड़ना आदि नासिका रोग, प्रतिश्याय (जुकाम) स्वर का बिगड़ना, विरसता, कास व खांसी सूजनादि रोग नष्ट हो जाते हैं और बुढ़ापा दूर होकर पुनः युवावस्था प्राप्त होती है। आयु की वृद्धि अर्थात् दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। चक्षु सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं और नेत्रज्योति, इस प्रकार जल-नेति करने से, खूब बढ़ती है। अतः ब्रह्मचर्य तथा

प्रत्येक स्वस्थ स्त्री वा पुरुष को प्रतिदिन मुख वा नासिका द्वारा उषःपान का अमृत पान करके अमूल्य लाभ उठाना चाहिये।

३—शौच

जल पीकर पहले लघुशंका (मूत्र त्याग) करें। तत्पश्चात् खुले जंगल में जाकर मल त्याग (शौच) करें। शौच के लिए ग्राम से जितना भी दूर जाओ उतना ही अच्छा है।

इसमें मनु जी महाराज का प्रमाण है—

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम्।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत्॥

(मनु० अध्याय ४ श्लोक १५१।)

मल-मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फैंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करें।

मनु जी की आज्ञा के अनुसार प्रातःकाल उत्तर की ओर और सायंकाल दक्षिण की ओर मुख करके शौच के लिये बैठें। जैसा कि आगे लिखा है। मुख तथा दांतों को बन्द रखें। बायें पैर पर दबाव रखकर बैठना अच्छा है। इससे शौच खुलकर आता है। शौच के समय बल लगाना वा कांखना बहुत ही हानिकारक है। बल लगाने से वीर्य नष्ट हो जाता है। जो मल (टट्टी) स्वयं आ जावे वही ठीक है।

मल मूत्र रोकने से हानियां

मल-मूल के त्याग पर ब्रह्मचारी को पूरा ध्यान रखना चाहिये। सदैव सब कार्यों को छोड़कर उचित समय पर शौच जाना अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि कभी निश्चित समय पर शौच

जाने की इच्छा भी न प्रतीत हो तब भी शौच के लिए अवश्य जाना चाहिये। भले ही मल विसर्जन (टट्टी) न भी हो, इस से मल की उष्णता कम हो जाती है और हानि नहीं करती। किन्तु जो लोग इस बाट में बैठे रहते हैं कि शौच जाने की इच्छा जब होगी तब जायेंगे, उनका स्वभाव बिगड़ जाता है। मल की उष्णता से नेत्रों की ज्योति घटने लगती है, बल-वीर्य भी क्षीण होने लगता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। भूख नहीं लगती। भोजन में अरुचि हो जाती है। शिर में पीड़ा रहती है। इसी प्रकार और अन्य अनेक रोगों की उत्पत्ति होकर मनुष्य सदैव रोगी रहता है। महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुतसंहिता में लिखा है—

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।
तदंत्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥

(सुश्रुतसंहिता। चिकित्सास्थान। अध्याय २४ श्लोक)

प्रातः काल (उषःकाल) में मल-मूत्र के त्याग से आयु बढ़ती है और आंतों का गुड़गुड़ाना, पेट का फूलना और भारीपन आदि रोग दूर होते हैं। जो प्रातःकाल शौच न जाकर देर से मल-मूत्र का त्याग करते हैं उनके पेट में मल भीतर-भीतर सड़कर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और विषैला हो जाता है। गुदा में कतरनी (कैंची) से काटने के समान पीड़ा होने लगती है। अपानवायु बिगड़ कर उसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है। जिससे मल भी ऊपर को चढ़ने लगता है और वह फिर जठराग्नि में जाकर पचने लगता है। उससे सारे शरीर का रक्त दूषित हो जाता है। शौच भी खुलकर नहीं आता। पेट में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होकर भयंकर शूल (पीड़ाएं) होने लगती हैं। कभी कभी तो मुख से भी मल निकलने लगता है। इसी प्रकार वायु के

अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए तो लिखा है कि "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मला:।" संसार में जितने भी रोग हैं उन सब की उत्पत्ति मल के कुपित होने से होती है। जिस मल के बाहर निकालने पर ऐसी भयंकर दुर्गन्ध आती है कि सब कोई उससे दूर भागता है। फिर वह अन्दर पड़ा हुआ क्या सुगन्ध देगा ? मल-मूत्र को रोकने वाला मनुष्य कैसे सुखी और स्वस्थ रह सकता है यह विचारने की बात है। इसलिए ब्रह्मचारी को किसी कार्य में फंसकर, मोह लज्जा वा भय के कारण जाड़े में शीत के डर से अथवा आलस्य से मल मूत्रादि के वेग को नहीं रोकना चाहिए। कितना भी आवश्यक कार्य क्यों न हो उस को छोड़कर तुरन्त ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिए। इस कार्य को सबसे आवश्यक समझें।

जो ब्रह्मचारी उपर्युक्त बातों का ध्यान न रखकर मल मूत्र के त्याग में आलस्य और प्रमाद करेगा तो वह अपने ब्रह्मचर्य को खो बैठेगा। क्योंकि मल-मूत्र की उष्णता से सारे शरीर में उष्णता और विष फैल जाता है। इन्द्रियां क्षुब्ध और चंचल हो उठती हैं। इन्द्रियों में अस्वाभाविक क्षुब्धता और उत्तेजना के कारण मनुष्य रोगी और कामी बन जाता है। जिस से वीर्य दूषित होकर अनर्थों और रोगों का मुख देखना पड़ता है। ठीक समय पर मल मूत्र के त्याग और शौच के साफ हो जाने से दिन प्रतिदिन स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता, तेज, पराक्रम, स्मृति, बुद्धि आदि सद्गुणों की वृद्धि होती है और वीर्य अत्यन्त शुद्ध और विकार रहित हो जाता है जिस से ब्रह्मचर्य में कोई बाधा नहीं होती।

पहले लिखा जा चुका है कि मल मूत्र की उष्णता से वीर्य का नाश हो जाता है। वीर्य नाश करना मानों अपने स्वास्थ्य पर

कुल्हाड़ा चलाना है। कहा भी है—

'धातुक्षयात् रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः।'

वीर्य नाश से रक्त आदि धातुएँ भी निर्बल, दूषित और नष्ट हो जाती हैं और "वीर्यं वै बलम्" वीर्य के अभाव में, जो बल का भण्डार है, जठराग्नि भी मन्द पड़कर अपना कार्य करना छोड़ देती है। क्योंकि वीर्य तथा रक्त आदि धातुओं के संचार (उष्णता से ही सारे शरीर के अवयवों में कार्य करने की शक्ति रहती है। इनके अभाव में सब कार्य बिगड़ जाता है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा (Current) के बन्द होने से सारा कारखाना बन्द हो जाता है, इसी प्रकार वीर्य के नाश से शरीर का सारा कार्य बन्द हो जाता है। पुनः जठराग्नि का मन्द पड़ना और आंतों का दुर्बल होना स्वाभाविक ही है और जब आंत और जठराग्नि अपना ठीक कार्य नहीं करती तो मलावरोध वा मलबद्धता (कब्ज) का रोग स्थिर रूप से हो जाता है और यही वीर्य नाश का मुख्य हेतु है; स्वप्नदोष, प्रमेह आदि भयंकर रोगों का जन्मदाता है। जिनके पेट में मल पड़ा रहता है, स्वप्नदोष तो ऐसे ही लोगों के साथ मित्रता गांठता है। इसलिए मल, मूत्र, अपानवायु आदि वेगों को रोकने से हानि ही है, लाभ कुछ नहीं।

मूत्र के वेग को रोकने से भी मूत्रेन्द्रिय और पेट में पीड़ा होने लगती है। मूत्र में जलन, शिर में पीड़ा यहां तक कि वीर्यनाश भी होने लगता है। मूत्र के वेग को रोकने से मूत्र में पहली धातु रस जिसका रंग श्वेत होता है आने लगती है। रस से जो रक्त आदि अन्य धातुएँ बनती हैं उनका बनना बन्द हो जाता है। जब शरीर को हृष्ट-पुष्ट और धारण करनेवाली धातुएँ ही नहीं बनती तो शरीर का ह्रास (नाश) अवश्यम्भावी है। इसी

प्रकार रात्रि में सोते समय शीत वा आलस्य के कारण जो मूत्र के वेग को रोक लेता है, उसे मूत्र की उष्णता से स्वप्नदोष वा वीर्य नाश हो जाता है।

इसी प्रकार मल को रोकने से जिन रोगों को उत्पत्ति होती है लगभग वही रोग अपान-वायु के रोकने से भी उत्पन्न होते हैं। 'न वेगान् धारयेत्-धीमान् जातान् मूत्रपुरीषयोः।' [चरक० सूत्र स्थान अ० ७ श्लोक २] मल, मूत्र, अपान-वायु [पाद] छींक, डकार; जम्भाई आदि वेगों को किसी भी अवस्था में ब्रह्मचारी वा किसी भी मनुष्य को नहीं रोकना चाहिए। रोकने के लिए तो काम, क्रोध, लोभ. मोह, शोक, भय, चिन्ता, अहंकार आदि मन के वेग ही बहुत हैं। इनके रोकने का यत्न करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने भी चरक शास्त्र में इसी प्रकार लिखा है—

लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् ॥२७॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्वर्तते परपीडया ।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत् ॥२८॥
(चरक संहिता सू० अ० ७)

लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान, अहंकार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, अतिराग और परधन में इच्छा आदि वेगों को रोकना चाहिए। और जो कोई भी शारीरिक वेग दूसरों को पीड़ा देने वाले हों, उनको भी रोकना चाहिए। क्योंकि इनके रोकने में ही लाभ है। मल, मूत्र आदि शारीरिक वेगों को रोकना महा-मूर्खता तथा ब्रह्मचर्य के लिए अत्यन्त घातक है। अतः ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिए प्रातः और सायं दोनों समय नियत समय पर मल-मूत्र का त्याग करना ब्रह्मचारी का ही नहीं,

अपितु सबका परम कर्त्तव्य है। शौच न आये तब भी दोनों समय जाना चाहिए। यदि किसी समय शौच न भी आये तो बहुत चिन्ता न करनी चाहिए और बल लगाकर (किन्छ-किन्छ कर) मल निकालने का यत्न नहीं करना चाहिए। यह ढंग अच्छा नहीं है। इससे निर्बल धातु (वीर्य) उष्णता पाकर मूत्रेन्द्रिय के द्वारा निकल पड़ता है। जिससे आँते निर्बल हो शौच साफ होने के स्थान पर उल्टी मलबद्धता (कब्ज) और अधिक हो जाती है।

यदि शौच न आये तो

यदि शौच खुलकर नहीं आता और स्थाई मलबद्ध (कब्ज) का रोग रहता है तो जल पीकर शौच जाने से पूर्व पेट के पश्चिमोत्तान आसन, मयूर आसन आदि आसन तथा अन्य हल्के व्यायाम करें। पेट को खूब हिलायें तदनन्तर शौच जायें। मार्ग में जाते समय मन में यह दृढ़ निश्चय करें कि मुझे शीघ्र शौच आ रहा है और यदि मैं तीव्र गति से नहीं चला तो मार्ग में ही मल निकल कर वस्त्र खराब हो जायेंगे। मल त्याग के लिए बैठ जाने पर भी इसी प्रकार का ध्यान करें कि सब मल गुदाद्वार के द्वारा बाहर निकल रहा है। ऐसा करने से मलबद्ध नहीं होगा। ऐसे दृढ़ निश्चय और ध्यान का हमारे शरीर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसे हंसी समझकर टाल न दें यथार्थ में हम शरीर के स्वामी न बनकर दास बने हुये हैं। इसलिए अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

मलद्वार की शुद्धि

शौच जाते समय पर्याप्त बड़ा जलपात्र शुद्ध जल का भरा हुआ अवश्य ही साथ ले जावें। पर्याप्त जल से भरे जल-पात्र के

बिना जाना महामूर्खता है। जो लोग जल-पात्र साथ नहीं ले जाते वे इतस्ततः पड़े हुए गन्दे जल से मलद्वार को शुद्ध करते हैं जिससे बवासीर आदि अनेक रोग हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे पक्के बाबू जी होते हैं जो जल से धोने का कष्ट ही नहीं करते। कागज़ या कपड़े से पोंछकर फेंक देते हैं जोकि अत्यन्त हानिकारक है। शौच वा मल-त्याग करने के पश्चात् जल से गुदाद्वार को धोने की रीति सारे भारतवर्ष में प्रचलित है किन्तु बहुत थोड़े लोग हैं जो यथार्थ में मलद्वार की शुद्धि करना जानते हैं। प्रायः शौच के समय अधिक से अधिक एक सेर जल का प्रयोग करते हैं कोई-कोई तो एक पाव जल से ही कार्य चला लेते हैं। कितने आश्चर्य की बात है! कि एक पाव पानी से पायु (गुदाद्वार) की कैसे शुद्धि हो सकती है, जब कि किसी विशेष अवस्था में एक घड़े से भी काम नहीं चलता। वैसे तो यह साधारण सा कार्य लगता है, किन्तु बहुत थोड़े व्यक्ति हैं जो मलद्वार की यथार्थ शुद्धि के ढंग वा प्रकार को जानते हैं।

इसलिए यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"बुद्धिमान् बना फिरता है, हग कर (शौच के) हाथ भी धोने नहीं आते"। जब किसी की मूर्खता सिद्ध करनी हो तो इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

पाठक! क्षमा करें। जो अधिक पढ़े लिखे हैं वे इस विषय में अधिक मूर्ख हैं। यदि इस मूर्खता के साक्षात् दर्शन करना चाहो तो शहर के सभी परिवारों तथा कालिजों के छात्रावासों में प्रतिदिन हो सकते हैं। शहर में एक गृहस्थ का परिवार सारा का सारा एक गन्दे तामलोट (जिसे न कभी धोते हैं, न मिट्टी से माँजते हैं) से वर्षों कार्य चलाता रहता है। इसी तरह कालिजों के छात्र इस धोने-माँजने के कष्ट से बचने के लिए शीशे की

बोतल का प्रयोग करते हैं। किन्तु इस प्रकार की छोटी-छोटी भूलों से उन्हें और भी अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं। प्रमाद वा अज्ञान ही इसका कारण है।

लोग यह नहीं जानते कि गुदा मल के निकलने का मार्ग है इसके रहने का स्थान नहीं। साधारण लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं कि शौच के बाद गुदा के अन्दर मल रह जाता है, जो गुदा को थोड़े से जल से केवल बाहर से धोने से दूर नहीं हो सकता और यही मल गुदा के अन्दर पड़ा रह कर सड़ता रहता है। इसी प्रकार बहुत समय तक प्रमाद वा अज्ञान से शुद्धि न होने के कारण अर्श (बवासीर) नासूर और भगन्दर जैसे भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन में आज संसार फंसा हुआ है। इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने चरक में लिखा है—

मेध्यं पवित्रमायुष्यमलक्ष्मी–कलिनाशनम् ।

पादयोर्मलमार्गाणां शौचाधानमभीक्ष्णशः ॥

(चरक संहिता सूत्रस्थान । अध्याय ५ । श्लोक ९५)

पाद (पैर) मल मर्गों (नाक, कान, गुदा, उपस्थेन्द्रिय आदि) को प्रतिदिन बारम्बार मलरहित वा शुद्ध करने से, धोने से, बुद्धि, पवित्रता तथा आयु की वृद्धि होती है। दद्रिता, पाप तथा रोगों का नाश होता है।

जब कि भारत में पाश्चात्य सभ्यता ने पग नहीं फैलाये थे उस समय तक चरक के इस श्लोक की महिमा का लोगों को भलीभांति ज्ञान था। उस समय काला मैन (मनुष्य) जमीन पर हगने वाला, मिट्टी से हाथ मांजनेवाला प्राचीन, सभ्यता का भक्त, कोट, बूट, पतलून आदि अप्राकृतिक वस्तुओं से भले ही अपरिचित था, किन्तु स्वास्थ्य और चरित्ररूपी धन का धनी

तथा बल वा शक्ति का भण्डार था। आज भी जो मनुष्य प्राचीन ढंग का प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, सौभाग्य से पाश्चात्य सभ्यता का भूत जिनके सिर पर सवार नहीं है, वे अब भी इस श्लोक के महत्व को भली भांति समझते और इसके अनुसार श्रद्धापूर्वक आचरण करके पूर्ण लाभ उठाते हैं। मल-मूत्र के मार्गों की शुद्धि की इतनी ही आवश्यकता है कि जितनी भोजन के पश्चात् मुख और दांतों की तथा आंख, नाक, कान आदि शरीर के अन्य अंगों की शुद्धि की आवश्यकता है। क्योंकि ये भी तो शरीर के आवश्यक अंग हैं। जिस प्रकार मुख, नासिका आदि के गन्दा रहने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मल-मूत्र के मार्गों की यथार्थ शुद्धि के अभाव में अनेक भयंकर रोगों का जन्म होता है। इसलिए महर्षि चरक की आज्ञानुसार शौच के पश्चात् गुदाद्वार की अन्दर और बाहर से भली भांति जल आदि से शुद्धि करना अनिवार्य है।

शुद्धि का प्रकार

गुदा के अन्दर वाम (उलटे) हस्त की अंगूठे के साथ वाली अंगुली प्रविष्ट करके गुदा के अन्दर अंगुली को चारों ओर घुमा कर जो मल गुदा के अन्दर भित्तियों (गुदा चक्रों) में लग रहा हो दायें हाथ से जल डाल-डाल कर भली भाँति शुद्ध कर डालें। तत्पश्चात् मिट्टी लगाकर अनेक बार जल से धोयें। पुनः अपने स्थान पर जाकर मिट्टी लगा लगाकर दोनों हाथों को तथा पीछे जल पात्र को मिट्टी तथा जल से इतना मांजना वा धोना चाहिए कि मल-मूत्र की किंचित्मात्र भी दुर्गन्ध शेष न रहे। इस प्रकार मल द्वार की शुद्धि के अनेक लाभ हैं।

मल द्वार की शुद्धि के लाभ

उपर्युक्त क्रिया को हठयोगी प्रतिदिन करते हैं। उनकी परिभाषा में इसका नाम "गणेश क्रिया" है। इसको प्रतिदिन करने से मलवद्धता (कब्ज) कभी नहीं होती अर्थात् मलविसर्जन की क्रिया ठीक होती रहती है। जिनको मलबद्धता (कब्ज) रहती है उनको भी शौच खुलकर आने लगता है। शरीर और मन दोनों निर्मल होकर चित्त प्रसन्न और शान्त रहता है। मस्तिष्क की ओर गन्दे परमाणु नहीं जाने पाते। इसलिए मस्तिष्क ठंडा और मन एकाग्र रहता है। आलस्य नाम को भी नहीं रहता। सदैव स्फूर्ति और उत्साह बना रहता है। गुदा द्वार की शुद्धि से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इससे वीर्य में शीतलता आती है। क्योंकि वीर्य-वाहक नाड़ियां गुदा द्वार से ही होकर बाहर आती हैं। इसलिये ब्रह्मचर्य रक्षा में बड़ी सहायता मिलती है और मूत्राशय (मसाना) तथा बवासीर, भगन्दर आदि गुदा के रोग कोसों दूर रहते हैं।

शुद्धि के विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥

(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३४)

मल-मूत्र के त्याग और शरीर के बारहों मलों की शुद्धि के लिए उतनी मृत्तिका (मिट्टी) और जल लेवे जितने से दुर्गन्धादि मिट सके।

बारह मल ये हैं—

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविड्घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रु दूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥
(मनु० अध्याय ५ श्लोक १३५-१३६॥)

वसा (चर्बी), वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, नाक का मैल, कान का मैल, कफ, आंसू, आंख का मैल और पसीना—ये मनुष्यों के वाहर मल हैं। शुद्धि को चाहने वाला मनुष्य मूत्र की जगह एक वार, गुदा में तीन बार, बांये हाथ में दश बार तथा दोनों हाथों में सात वार मिट्टी लगावे।

मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि

महर्षि चरक की आज्ञानुसार सभी मल मार्गों की शुद्धि करनी आवश्यक है। शौच के समय ही मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि भी प्रतिदिन करनी चाहिये। इसमें प्रमाद न करें। जल स्वयं स्वाभाविक रूप से मैल को शुद्ध करने वाली वस्तु है। मूत्रेन्द्रिय के आन्तरिक भाग को तो मूत्र ही, जल के ही कुछ परिवर्तित रूप में प्रतिदिन आता हुआ साफ करता है और स्वयं भी बाहर आ जाता है। किन्तु मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग को त्वचा ढके रहती है। इसके नीचे एक प्रकार की सफेद वस्तु, जो मैल है, पैदा होती रहती है और त्वचा के नीचे इधर-उधर जम जाती है। यदि इसे उतार के शुद्ध न किया जाये तो यह वस्तु भीतर एकत्रित होकर खुजली पैदा करती है और इसे स्वाभाविक रूप से बालक खुजाने लगता है और यहीं से दोष उत्पन्न होता है। यह क्रिया अनेक भयंकर दोषों व सर्वनाश का कारण बनती है। इसलिए शौच के समय अथवा मूत्र त्याग के समय मूत्रेन्द्रिय के सिरे की त्वचा (चर्म) पीछे हटाकर इस गन्दे मैल को प्रतिदिन जल से सर्वथा धो डालें। इसे कभी एकत्रित न होने दें। मूत्रेन्द्रिय के धोते समय ब्रह्मचारी

कभी अधिक घर्षण न करे क्योंकि रगड़ने से इन्द्रिय में उत्तेजना उत्पन्न होकर वीर्यनाश की सम्भावना रहती है।

मूत्रेन्द्रिय-स्नान

मूत्रेन्द्रिय के सिरे के भीतरी भाग में जो छिद्र होता है जिसमें से पेशाब निकलता है, ठीक इसी छिद्र के ऊपर शीतल जल की वहुत पतली धार प्रतिदिन अनेक बार डालनी चाहिये दो-तीन मिनट तक इस धारा को निरन्तर डालने से अत्यधिक लाभ होता है। मूत्रेन्द्रिय में सब शिरायें (नसें) इकट्ठी हो जाती हैं, अथवा यों समझना चाहिये कि शरीर के सब ज्ञान तन्तुओं का केन्द्र वा मूल है। जिस प्रकार बृक्ष की जड़ों को जल देने से सारा वृक्ष हरा-भरा रहता है और उसको शक्ति मिलती है उसी प्रकार शीतल जल की धारा से मूत्रेन्द्रिय के ठण्डा होने से सम्पूर्ण शरीर में शीतलता आ जाती है और एक विशेष शान्ति मिलती है। इसके विपरीत दुष्टविचार वा कुचेष्टा के कारण यदि मूत्रेन्द्रिय में उत्तेजना वा उष्णता आ जाती है तो सारे शरीर में उष्णता वा अग्नि उत्पन्न हो जाती है जो वीर्य नाश का कारण वनती है। इसलिये मूत्रेन्द्रिय को जब-जब मूत्र त्याग करें, शीतल जल से धो डालें। इस प्रकार दिन में अनेक वार मूत्रेन्द्रिय स्नान करने से अत्यन्त लाभ होगा।

ऋषियों ने इसीलिए मूत्रत्याग करते समय जलपात्र साथ ले जाना लिखा है। इस नियम में वीर्य रक्षा का बड़ा भारी रहस्य भरा है। इन्द्रिय स्नान के समय शीतल जल की धार डालने के पश्चात् समस्त मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोषों को भली-भांति शीतल जल से शुद्ध और शीतल कर देना चाहिए। शौच तथा मूत्रेन्द्रिय स्नान के लिये उष्ण (गरम) जल का कदापि भूल कर भी प्रयोग

नहीं करना चाहिए। मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान से स्वप्नदोष, प्रमेह (शौच के समय या मूत्र त्याग के समय वीर्य का आना) आदि रोगों से पिण्ड छूट जाता है। इनके होने की सम्भावना ही नहीं होती। कितने ही स्वप्नदोष के रोगी केवल इसी क्रिया से स्वस्थ होते देखे गये हैं। पचास प्रतिशत लाभ प्रायः सभी रोगियों को हो जाता है। इस छोटी सी क्रिया से मूत्रेन्द्रिय की व्यर्थ की उत्तेजना समाप्त होकर वीर्य में स्तम्भन शक्ति और गाढापन आता है, मन की चञ्चलता मिटती है। जलती हुई कामाग्नि भी शान्त हो जाती है। कामरिपु पुंछ दबाकर भाग जाता है। किन्तु एक बात का सदैव ध्यान रक्खें कि विना किसो कारण के मूत्रेन्द्रिय का स्पर्श कभी भूल कर भी न करें। मूत्रेन्द्रिय शुद्धि अथवा मूत्रत्याग के समय जब कभी इसको छूएं उसी समय ओ३म् का जाप आरम्भ कर दें।

भाव पवित्र और ऊंचे रक्खें। मूत्रेन्द्रिय काली नाग के समान है ओ३म् का जाप (पवित्र विचारों सहित) नागदमन बूंटी है। अतः जब भी आवश्यकतावश मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करना पड़े तो उसी समय ओ३म् का जाप भी साथ-साथ आरम्भ करदें। इसे व्यर्थ में स्पर्श करना मृत्यु को बुलाना है, यह सदैव याद रखें। इसे व्यर्थ में स्पर्श वा मर्दन करना विनाश का ही कारण बनता है। इसी लिए तो महर्षि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है "उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करे"। प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द जी महाराज ने यह वाक्य लिख कर हमें कितना सावधान किया है। आज मूत्रेन्द्रिय रूपी विषैले नाग को व्यर्थ छेड़कर संसार की कितनी हानि वा विनाश हुआ है इसका विचार मात्र आते ही रोना आता है। अतः मूत्रेन्द्रिय

की शुद्धि वा स्नान तथा मल मूत्र त्याग के समय आवश्यकता पड़ने पर ही मूत्रेन्द्रिय को स्पर्श करें किन्तु उस समय भी शुद्ध विचार और पवित्र भावना रखें नहीं तो लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। मूत्रेन्द्रिय स्नान वा इसकी शुद्धि ब्रह्मचारी ही नहीं किन्तु प्रत्येक ब्रह्मचर्य प्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन करनी चाहिए। मूत्रेन्द्रिय के बाह्य भाग को मिट्टी लगाकर जल से प्रतिदिन शुद्ध करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन करने से अनेक प्रकार के वीर्य सम्बन्धी रोगों से ब्रह्मचारी बचा रहता है। अतः इसको व्यर्थ साधारण समझकर टालना नहीं चाहिए किन्तु अपनी दिनचर्या का इसे अङ्ग समझ कर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करना चाहिए।

साबुन का प्रयोग

जल और मृत्तिका शुद्धि के लिए सर्वोत्तम हैं किन्तु आज का संसार निराला है, वह अपने ही ढंग से चलता है। इसीलिए अंग्रेजी फैशन के लोग प्रायः शौच के पश्चात् हाथ शुद्ध करने के लिए साबुन का प्रयोग करते हैं। साबुन के प्रयोग से साधारण सी शुद्धि तो हो जाती है। किन्तु इससे रूक्षता खूब बढ़ती है और धन भी अधिक व्यय होता है। साबुन का प्रयोग करने वाले भली भांति जानते हैं कि साबुन के साथ धोने वा स्नान के पश्चात् हाथ आदि शरीर के अंग कितने रूक्ष हो जाते हैं और जो शुद्धि मिट्टी मलकर हाथ धोने से होती है वह साबुन से कभी नहीं हो सकती। क्योंकि मिट्टी का स्वाभाविक गुण गंध है। इसलिए जितनी दुर्गन्ध को दूर करने की शक्ति मिट्टी में है उतनी अन्य किसी पदार्थ में नहीं और जिस प्रकार बिना संकोच के हम अधिक मिट्टी का उदारता से प्रयोग कर सकते हैं, साबुन का उस प्रकार प्रयोग करने में चाहे कोई कितना ही धनाढ्य

क्यों न हो, संकोच ही करता है क्योंकि इसमें धन का अधिक व्यय है। दुर्भाग्य से हमारे देश में जितना साबुन का प्रयोग बढ़ता जा रहा है उतनी ही त्वचा (चर्म) रोगों की वृद्धि हो रही है। लाहौरसोर, लोकलसोर, मुगलीफोड़ा, चम्बल आदि विचित्र रोग जिनका कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, आज वे इस सावुन की कृपा से नगरों में ही नहीं छोटे-छोटे ग्रामों में भी पहुंच गये हैं और विशेषकर दिल्ली, कलकत्ता, बम्वई, अमृतसर आदि वड़े-वड़े नगरों में जहाँ झूठी जैन्टिलमैनी ने खूब पग फैला रक्खे हैं और लोगों के सिर पर फैशन का भूत बुरी तरह चढ़ा है। जहां लोग सारे दिन यों ही निष्कारण साबुन का प्रयोग करते रहते हैं वहाँ पामा (खुजली) दद्रु (दाद) चम्वल, लोकलसोर आदि चर्म रोगों का राज्य है। अंग्रेजी ढंग के साबुनों में प्रायः पशुओं की मेद (चर्वी) भी पड़ती है, जो चर्म रोग ग्रस्त पशुओं की भी होती है। और सोडा कास्टिक जिससे साबुन वनता है; यह अत्यन्त तीक्ष्ण होता है और जो त्वचा के लिए अत्यन्त हानिकारक है। यहाँ तक कि शरीर के चर्म को जला ही डालता है। इसलिए स्वास्थ्यप्रिय मनुष्य को फैशन के कारण स्नान तथा हाथ आदि के धोने में सावुन के प्रयोग की मूर्खता नहीं करनी चाहिए। इसमें हानि ही हानि है लाभ कोई नहीं। शरीर शुद्धि विना साबुन के भी भली भांति किस प्रकार हो सकती है इसके लिए पुस्तक का स्नान सम्वन्धी भाग पढ़ें।

शौच सम्बन्धी आवश्यक बातें

मल-मूत्र के त्याग के विषय में मनु जी का आदेश—

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे।
न फालकाष्ठे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥४५॥
न जीर्णदेवायतने न बल्मीके कदाचन ॥४६॥
(मनु० अ० ४)

मार्ग, राख, गोशाला वा गोचर भूमि में मूत्र त्याग (पेशाब) न करें। हल से जुते हुए खेत में, जल में, चिता में, ऊँचे टीलों, पुरानी (टूटी फूटी) यज्ञशाला वा मन्दिर में, बम्बी आदि कीड़ों के बिलों में कदापि मल-मूत्र त्याग न करे।

मुनिवर चाणक्य अपने कौटिलीय अर्थशास्त्र में लिखते हैं—'नाप्सु मूत्रं कुर्यात्' (सूत्र ४०६) अर्थात् जल में मूत्र न करें।

आजकल के लोग ऋषियों की इस पवित्र शिक्षा पर ध्यान नहीं देते और निर्लज्ज होकर ऊँचे टीलों और मार्गों पर ही मल मूत्र त्याग करते देखे जाते हैं। न ही इन्हें यज्ञशाला मन्दिरादि पवित्र धार्मिक स्थानों में श्रद्धा है। गोशाला वा गोचर भूमि में मल त्याग न करने के महत्व को तो ये समझ ही क्या सकते हैं। ऐसे लोगों की ही कृपा से तो गाय आदि पवित्र पशु भी मल भक्षण करने लगे हैं। कीड़े मकोड़े आदि क्षुद्र प्राणियों के बिलों वा वम्बी पर भय के कारण भले ही मल-मूत्र त्याग न करें, वैसे संकोच कोई नहीं। उपर्युक्त वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग करने से पवित्र धार्मिक स्थानों की पवित्रता नष्ट होती है। गायों का चारा, अन्न, जल आदि दूषित होकर स्वास्थ्य को बिगाड़ने का कारण बनते हैं और जलवायु दूषित होकर अन्य सभी प्राणियों को हानि पहुँचती है। बम्बी और बिल आदि पर मल-मूत्र त्याग की मूर्खता करने से सर्पादि विषैले जन्तुओं से काटे हुए मूर्खों के दर्शन मैंने किये हैं। अतः ऐसे वर्जित स्थानों पर मल-मूत्र त्याग करने से हानि के अतिरिक्त लाभ कोई नहीं होता। कितने अनपढ़ ही नहीं, पढ़े-लिखे बाबू भी निर्लज्ज हो जाते हैं। जान-बूझकर ऊँचे ऊँचे स्थानों पर, हर समय चलने वाले मार्गों के ऊपर वा अत्यन्त समीप नीचा सिर करके मल त्याग के लिए बैठ जाते हैं और 'नीचे को गर्दन झुकाई सिर से

ऊँची खाई' इस लोकोक्ति को पूर्ण करने का धृष्टता करते हुए किंचित् भी लज्जित नहीं होते। जब मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है तो वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग की तो साधारण सी बात है वह न जाने क्या-क्या कुकृत्य कर डालता है। मुझे भली भांति स्मरण है ऐसा ही कोई नीच मनुष्य यज्ञ वेदी पर मल त्याग करके अपना मुँह काला कर गया था। इसी प्रकार मल मूत्र त्याग के विषय में मनु जी महाराज अन्य आदेश देते हैं—

न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्।

(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४७-४८)

जिनमें जीव रहते हों ऐसे गड्ढों में, चलते-चलते तथा खड़े-खड़े नदी आदि जलाशय के तट पर और पर्वत की चोटी पर मल मूत्र न त्यागे। वायु, अग्नि, विप्र (विद्वान् वा मेधावी पुरुष), सूर्य, जल और गौ को देखता हुआ मल मूत्र का त्याग कदापि न करे।

जिन गड्ढों में जीव रहते हैं उन में मल मूत्र त्याग करने से जहां उन प्राणियों को हानि और कष्ट होता है वहां ऐसा करने वाला स्वयं भी हानि उठा सकता है जैसा मैं पहले लिख चुका हूं।

खड़े खड़े या चलते हुए मल मूत्र त्याग करना सभ्यता और स्वास्थ्य के विरुद्ध है और इस प्रकार करने से मल मूत्र का त्याग भलीभान्ति होता भी नहीं। किन्तु ऋषियों की शिक्षा के विरुद्ध चलने का स्वभाव आजकल के अंग्रेजी पढे बाबुओं का है ही। इसी प्रकार नदी के तीर और पर्वत के शिखर पर मल मूत्र का

त्याग करने से पवित्र जल और दिव्य जड़ी बूटियां दूषित होकर आरोग्य प्रदान करने के स्थान पर हानिकर सिद्ध होती हैं। उपकार के स्थान पर हानि करना मनुष्य का धर्म नहीं।

अग्नि, वायु, जल, और सूर्य को देखते हुए मल मूत्र त्याग करने से सीप आदि अनेक चरम रोगों के होने से मनुष्य कष्ट पाता है।

विप्र विद्वान् मेधावी पुरुष और गोमाता आदि जिनको मनुष्य अपना पूज्य समझता है उनकी ओर देखते हुए मल मूत्र त्याग करने से जो श्रद्धा और आदर की भावना उनके प्रति है वह नहीं रहती, इस से मनुष्य निर्लज्ज होकर और भी अनेक प्रकार के कुकृत्य करने लगता है। भय और लज्जा के कारण भी मनुष्य बहुत से पापों से बचा रहता है अतः उपर्युक्त वर्जित स्थानों पर मल मूत्र त्याग कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसा जो करते हैं वे मनुष्य नहीं, उन्हें पशुओं का बड़ा भाई समझना चाहिए।

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥
(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ४९)

लकड़ी, मिट्टी तथा तृण (झाड़ी वृक्षादि) की आड़ में बैठकर वस्त्र से गुप्त अङ्गों को ढक कर तथा मस्तक वा सिर को बाँधकर प्रतिदिन नियम से मौन होकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥
(मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५०)

दिन में उत्तर को ओर मुख करके, रात्रि में दक्षिण की ओर, और सायं प्रातः भी दिन के समान (उत्तर की ओर) मुख करके मल मूत्र का त्याग करें।

मनु जी महाराज ने किस प्रकार, किसी स्थान पर किसी वस्तु के पीछे छिप कर वा आड़ लेकर मल मूत्र का त्याग करना चाहिए यह भी स्पष्ट कर दिया है। प्रातः, सायं, दिन और रात में किस दिशा में मुख करना चाहिए यह भी स्पष्टतया लिख दिया है। इस विषय में कोई कोई यह लिखते हैं कि जिधर की वायु चलती है उधर मुख करना चाहिए।

विशेष अवस्थाओं में मल मूत्र त्याग करने के विषय में मनु जी महाराज निम्नलिखित विधान करते हैं—

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५१)

भित्ति वा मेघ की छाया में, रात्रि, आंधी तथा मेघादि द्वारा हुए विशेष अन्धकार में शारीरिक क्लेश अथवा किसी प्रकार की आपत्ति आ जाने का भय हो, ऐसी अवस्थाओं में द्विज रात वा दिन के समय में दिशा का ज्ञान न होने पर चाहे जिधर को मुख करके मल-मूत्र त्यागे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥

(मनु० अ० ४ श्लोक ५२)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, द्विज, गौ और वायु के सम्मुख मूत्र त्यागने वाले पुरुष की निर्मल बुद्धि मलीन और नष्ट हो जाती है। इस विषय में पहले भी लिख चुका हूं कि मनु जी महाराज

की इस आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य को अनेक रोग हो जाते हैं। रोगी मनुष्य की बुद्धि तो बिगड़नी ही हुई, जो बुद्धि ही नहीं रही तो इससे बढ़कर और क्या हानि होगी ?

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्"

बुद्धि का बल सबसे बड़ा बल है। इसे खोकर मनुष्य के पास रह ही क्या जाता है ? अतः मनु जी महाराज की आज्ञा का पालन करना चाहिए।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥
(मनु० अ० ४ श्लोक ५६)

विष्ठा (मल), थूक, खकार, कुल्ला वा मल मूत्र युक्त वस्तु, रक्त (खून) और विष वा विषैले पदार्थ भी जल में न डाले।

जल जसे पवित्र पदार्थ में जिस के लिए "जलं वै जीवनम्" जल प्राणिमात्र के जीवन का आधार है, यह कहा है उस में मल मूत्र आदि गन्दे पदार्थ, इसी प्रकार रक्तादि अभक्ष्य और विषैले पदार्थ डालना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? जिस जल को भगवान् ने शिवतम रस कहकर जल की श्रेष्ठता और गुणों का बखान किया है उसमें उपर्युक्त दूषित पदार्थ डालकर उसे मलीन करना किसी विचारशील व्यक्ति की बुद्धि में कैसे आ सकता है ? जल तो परम औषध और माता के समान रक्षा करनेवाला अमृत है। इसके सदुपयोग से मनुष्य किस प्रकार कितना परम लाभ उठा सकता है ? इसे स्नान के प्रकरण में देखने की कृपा करें।

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥
(मनु० अ० ४ श्लोक १५१)

मल मूत्र का त्याग, पैर धोना वा जूठन का फेंकना आदि कार्य घर वा निवास स्थान से दूर ही करे।

जो वस्तुएं गन्दी वा दुर्गन्धयुक्त हैं उनको निवास स्थान से दूर ही फेंकने में मनुष्य का हित है। यह तो सब ही जानते हैं कि दुर्गन्ध से रोग फैलते हैं और रोगों से मनुष्य के बल, बुद्धि, आयु, सुन्दरता आदि सभी श्रेष्ठ गुणों और शक्तियों का नाश और ह्रास होता है अतः जितना भी दूर इनको फेंका जाय वा त्याग किया जाये उतना ही हितकर है। हमारे प्राचीन पुरुष इसीलिए निवास स्थान से एक दो मील दूर जाकर शौच वा मल का त्याग किया करते थे। इसलिए वे स्वास्थ्य, बल, शक्ति आदि में सब प्रकार से हमारी अपेक्षा अत्यधिक उन्नत थे। हमें भी अपने ऋषियों की उपर्युक्त आज्ञाओं का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। मल-मूत्र के त्याग सम्बन्धी उपर्युक्त नियम ब्रह्मचारी क्या सभी स्वास्थ्य प्रेमी सज्जनों के लिए एक समान हैं। हमारे परम पावन ऋषि और महर्षियों की आज्ञा श्रेष्ठ और महान् है, उसी के अनुसार चलने में हमारा कल्याण है। हम क्षुद्र बुद्धि मनुष्यों का क्या अनुभव और क्या ज्ञान है। किसी भी विषय में देखें हमारे प्राचीन पुरुषाओं ने कितनी खोज और अनुभव किया है।

प्रिय पाठक गण! आओ आओ, अपने प्राचीन ऋषियों की शरण में आओ, उनके ज्ञान और अनुभव से अपरिमित लाभ उठाओ, और जन्म जन्मान्तर तक गद्गद् होकर उनके गुण गाओ।

ओ३म् शान्ति।

मुद्रक— आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, दयानन्द मठ, रोहतक। फोन २८७४

ब्रह्मचर्य के साधन

[तृतीय भाग]

दन्त रक्षा

ब्रह्मचारी ही क्या प्रत्येक मनुष्य को प्रातःकाल उठ, चक्षु स्नान, उषःपान एवं शौच (शरीर के अधोभाग की शुद्धि) के पश्चात् उपरि भाग को शुद्ध करना चाहिए। रात्रि में सोकर जब प्रातः मनुष्य उठता है, मुख के अन्दर जमा हुआ गन्दा मल मिलता है, जिससे मुख और दांतों में से दुर्गन्ध आने लगती है। दुर्गन्ध को दूर करना और दांतों की शुद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है। वेद भगवान् की इस विषय में सबके लिए आज्ञा है कि 'अशोणा दन्ताः (अथर्व० १९।६०।१) अर्थात् तुम्हारे दांत निर्मल हों। इस लिए हमारे ऋषियों ने प्रतिदिन दन्तधावन (दातौन) करने का नियम बनाया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध और प्राचीन शास्त्र चरक में लिखा है —

आपोथिताग्रं द्वौ कालौ कषायकटुतिक्तकम्।
भक्षयेत् दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन्॥

(चरक सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ६८)

प्रतिदिन दो समय कषैले, कटु तथा तिक्त रसप्रधान वृक्ष की (जिसके आग्रभाग को चबाकर कूंची (बुरुश) के समान कर लिया हो ऐसे दन्तपवन (दातौन) से दंतमांस (मसूड़ों) को अभिघात (चोट) से बचाते हुए दन्तधावन करें। इसीप्रकार महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत्।

एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन च ॥
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥

(चिकित्सा स्थान अध्याय २४ श्लोक ८।९

तेजवल आदि चूर्ण के साथ दातौन से दांतों को प्रतिदिन मलें दातौन के अग्रभाग को चबाकर कूंची बनायें और एक एक दांत पर दातौन की मृदु कूंची को रगड़ना चाहिए। यहां दातौन के साथ तेजबल आदि मञ्जन का प्रयोग भी लिखा है जो दांतों के लिए अत्यन्त हितकर है। मनु जी महाराज ने भी प्रातःकाल दातौन करने का विधान किया है—

"दन्तधावनं पूर्वाह्ण एव कुर्वीत" (अ० ४ श्लोक १५२)

दन्तधावन प्रातःकाल (प्रथम प्रहर में) ही करे।

दातौन करने के लाभ

निहन्ति गन्धवैरस्यं जिह्वादन्तास्यजं मलम्।
निष्कृष्य रुचिमाधत्ते सद्यो दन्तविशोधनम् ॥

(चरक सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ६६)

प्रतिदिन दन्तशोधन (दातौन) करने से जिह्वा, दांत और मुख के अन्दर का मैल निकल जाता है दुर्गन्ध तथा विरसता (मुख का खराब स्वाद होना) नष्ट होते हैं और रुचि बढ़ती है। उपर्युक्त गुण दातौन से तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं।

सुश्रुत में दातौन के गुण इस प्रकार दर्शाये हैं—

तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति।
वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यं करोति च ॥

(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ९।१०

दातौन मुख की दुर्गन्ध और दूषित कफ को बाहर निकला देती है। मल आदि की विशदता (चिकनाई) को दूर करती तथा अन्न में रुचि और मन में प्रसन्नता उत्पन्न करती है।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मुख और दांतों की शुद्धि के विज्ञान पर प्राचीन ऋषियों ने बड़ी भारी खोज की है और प्रतिदिन दातौन करने पर बल दिया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि मुख शरीर का वह अवयव है जिसके द्वारा हमारे पेट में जो भोजन पहुँचता है और इसमें दांत आदि अवयव भी वे ही रखे गये हैं जो भोजन को उदर तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। दाँत भोजन को चबाकर पचाने योग्य बनाते हैं। दांतों को भोजन चबाते समय जीभ भोजन को उलटने पलटने में सहायता देती है और इसका स्वाद भी बताती है। बोलना, शब्द करना आदि भी मुख का कार्य है। जिस प्रकार शरीर में मुख एक आवश्यक अंग है उसी प्रकार मुख में दांत भी बड़े महत्वपूर्ण हैं। दांतों के द्वारा आयु का ज्ञान होता है। इन से स्वास्थ्य की अवस्था भी जानी जा सकती है। जब तक दांत हैं तब तक ही भोजन का स्वाद आता है पीछे तो पेट ही भरना होता है। दांतों से ही मुख की सुन्दरता है। दांतों के होने से मुख (चेहरा) भरा हुआ प्रतीत होता है। दांतों के अभाव में मुख पिचक जाता है और गाल अन्दर को धंस जाते हैं। मनुष्य की आकृति बिगड़ कर कुरूप हो जाती है। शब्दों का उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट नहीं होता। दांतों के नाम भी पृथक् पृथक् हैं जैसे दाढें, कीलें और दांत। हमारे दाँत मुख के जिस भाग में गड़े हुए होते हैं उसे मसूड़ा कहते हैं। दांत दो बार निकलते हैं, एक तो बाल्यकाल के दूध के दांत जो आठ दस वर्ष की आयु में ही गिर जाते हैं पुनः नये अन्न के दांत उत्पन्न होते

हैं, जो सावधानी रखने पर अन्त तक कार्य देते हैं। जो व्यक्ति सौ वर्ष से अधिक आयु भोगते हैं उनके तीसरी बार भी दाँत उगते देखे गये हैं किन्तु यह दांत निर्बल और बहुत छोटे होते हैं।

दांतों और स्वास्थ्य का बड़ा भारी सम्बन्ध है। दांतों के स्वस्थ रहने से शरीर भी स्वस्थ रहता है और दांतों के बिगड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है। दांतों का आरोग्य आयु और दृढ़ता उनकी शुद्धि पर निर्भर है। कुछ लोग तो इनको शुद्ध करने का कष्ट भी नहीं करते। जो थोड़े बहुत कुछ करते भी हैं उनमें से अधिकांश को दांतों को शुद्ध करने का यथार्थ ज्ञान ही नहीं होता। कुछ तो अंगुली से घिसकर ही शुद्धि समझ बैठते हैं। कुछ लोग कोयला, ईंट का खोरा मिट्टी, रेत, राख को घिसकर ही इनसे दातौन करते हैं। कोई कोई तो तम्बाकू चिलम का गुल आदि निकृष्ट पदार्थों का प्रयोग करके अपने दांतों का सर्वनाश कर डालते हैं। अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबू तो टूथपाउडर और बुरुश से दांतों को माँजते हैं और दांतों को मांज मांज कर खराब कर डालते हैं। इसी प्रकार कितने ही भोले लोग सुपारी की राख बदामों के छिलके की राख और बाजारी मंजनों से अपने दांतों की जड़ काट लेते हैं और लाभ के स्थान पर हानि ही उठाते हैं। बहुत थोड़े ही ऐसे विचारशील व्यक्ति हैं जो अपने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र की आज्ञा पर ऋषियों के आदेशानुसार विधिपूर्वक वृक्ष शाखा की अच्छी मृदु (कोमल) कूंची बनाकर प्रतिदिन दातौन करते हैं। कहां तक अपने शास्त्रों और ऋषियों के गुण गाये उन्होंने प्रत्येक जीवनोपयोगी विषय को कितना खोलकर स्पष्ट कर दिया है मानो गागर में सागर भर दिया है।

दातौन का परिमाण

दातौन कितनी मोटी तथा लम्बा होनी चाहिये । इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम् ।
कनिष्ठिका परीणाहमृज्वग्रन्थितमव्रणम् ।
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि मृद्वग्रं शस्तभूमिजम् ।
(चिकित्सास्थान २४ अध्याय ४-५ श्लोक)

अर्थात् दातौन १२ अंगुल लम्बी और कनिष्ठिका (सबसे छोटी अंगुली) के समान मोटी और सरल (सीधी) होनी चाहिए। वह ग्रन्थित (गुथी हुई) गाँठगठीली और टेढ़ी मेढ़ी न हो। उसमें कोई व्रण (छिद्र) न हो अर्थात् किसी प्रकार का कीड़ा आदि न लगा हो और विकाररहित हो। जहां दो शाखायें हों ऐसी गांठ वाली न होनी चाहिये। दातौन का अगला भाग मृदु होना चाहिए (जिसकी अच्छी कूंची बन सके) और जिस वृक्ष की दातौन हो वह श्रेष्ठ शुद्ध भूमि में उत्पन्न हुआ होना चाहिये। इच्छा हुई, जिस किसी वृक्ष की दातौन तोड़ी और करने लगे। ऐसा करने से किसी विषवृक्ष वा हानिकर वृक्ष की भूल से दातौन की जा सकती है।

इसलिए दातौन का एक स्थान पर "विज्ञातवृक्षम्" ऐसा विशेषण दिया है अर्थात् जिस वृक्ष की दातौन अपनी प्रकृति के अनुकूल और लाभदायक हो, उसकी दातौन करनी चाहिये। अज्ञात वृक्ष की दातौन कभी न करें। आयुर्वेद के ग्रन्थों में अनेक वृक्षों की दातौन का विधान है। चरक में लिखा है—

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभासनाः ।
शस्यन्ते दन्तपवने ये चाप्येवंविधा द्रुमाः ।
(सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ७०)

अर्थात् करञ्ज, कनेर, आक, मालती, अर्जुन तथा असन (विजयसार) आदि वृक्ष तथा इनके समान गुण वाले अन्य वृक्षों की भी दातौन करनी चाहिए। इसी प्रकार महर्षि धन्वन्तरि भी सुश्रुत में लिखते हैं—

निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ।
मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ॥
(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ६)

कड़वे वृक्षों में नीम, कषैले वृक्षों में खैर, मधुरों में महुआ और कटु (चर्परे रसवाले) वृक्षों में करञ्ज की दातौन श्रेष्ठ होती है। एक अन्य स्थान पर लिखा है—

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ।
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ॥
भक्षयेकद्दन्तधावनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥

आक, बड़, खैर, करञ्ज और अर्जुन आदि उसी प्रकार कषाय, कटु और तिक्त रसवाले अन्य वृक्षों की दातौन ले और उसके अग्रभाग को चबाकर ऐसी मृदु कूंची बनाले कि उससे दांतों को घिसते समय मसूड़ों को रगड़ न पहुंचे। इसी प्रकार कई ग्रन्थों में इरिमेद, अपामार्ग, कदम्ब, आम्र, वेणुपृष्ठ (बांस), बिल्व और उदुम्बर आदि वृक्षों की दातौन करने का भी विधान है।

एक स्मृति में तो यहां तक लिख दिया है—

"सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः"

अर्थात् सब कांटेदार वृक्षों और दूधवाले वृक्षों का प्रयोग यश और पुण्य प्रदान करता है अर्थात् इनकी दातौन भी लाभदायक है।

दातौन किस वृक्ष की हो ?

हमारे सम्मुख यह समस्या है कि इतने वृक्षों में से किन-किन वृक्षों की दातौन करें ? प्रभु ने तो सभी वृक्ष हमारे लाभ के लिए बनाये हैं। किन्तु इनसे लाभ वा हानि उठाना हमारी बुद्धि अथवा इनके उचित अनुचित प्रयोग पर निर्भर है। दातौन सदैव अपनी प्रकृति के अनुकूल किसी योग्य वैद्य से सम्मति लेकर करनी चाहिये इन वृक्षों में से जिस वृक्ष की दातौन करने की वैद्य आपको सम्मति दे, वही करें। ऐसे ही बिना विचारे इनमें से आंख मीच कर दातौन करना आरम्भ न कर दें जिससे लाभ के स्थान पर हानि हो जाये। पाठकों के लाभ की दृष्टि से इस विषय को और स्पष्ट किया जाता है। चार प्रकार के रसवाले वृक्षों की दातौन करने का विधान सभी ने किया है। जैसे सुश्रुत में "कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः" इत्यादि लिखा है। ये चार प्रकार के रसवाले वृक्ष हैं इनमें से किसी भी एक रसवाले वृक्ष की दातौन प्रातः उठकर करनी चाहिये। इनमें जो जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें हम पहले लिख चुके हैं। जैसे कड़ुवे वृक्षों में नीम की दातौन सर्वश्रेष्ठ होती है। नीम एक ऐसा प्रसिद्ध वृक्ष है जिससे प्रायः साधारण लोग भी परिचित हैं। इसके विषय में विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं।

१—नीम की दातौन

निघण्टु में नीम के विषय में लिखा है:- नीम कड़वा, शीतल, सूजन और वायु का शमन करता है। नेत्रों के लिये हितकारी, कृमि पित्त और विषनाशक है। अत्यन्त रक्तशोधक है। इसी प्रकार के अनेक गुण और भी लिखे हैं। इसी लिए नीम की दातौन भी मसूड़ों

वा दांतों के सब रोगोंके लिये लाभदायक है। कृमियों को दूर करने-वाली है। यूनानी इलाज की पुस्तक (इलाजुलगुरबा) में लिखा है–"जो मनुष्य नीम की दातौन करता है, उसे कोई रोग नहीं होता और न उसके दांतों में पीड़ा होती है"। रक्त के सभी दोषों को दूर करके सर्वथा शुद्ध कर देती है। ज्वर के रोगियों के लिये हितकारक है। भोजन में रुचि उत्पन्न करती है। व्रण (फोड़े फुन्सियों) से सुरक्षित रखती है। गर्मी से बचाती है और कुपित कफ का शमन करती है। वमन आने को रोकती है। प्रमेह आदि वीर्य के रोगों के लिये लाभप्रद है। नेत्रज्योति को बढ़ाती और रक्षा करती है। रक्त दोष के रोगियों के लिये प्रतिदिन नीम की दातौन का प्रयोग बहुत अच्छा है और सामान्य लोगों के लिये वसन्त ऋतु में अर्थात् फाल्गुन वा चैत्र के दिनों में नीम की दातौन बहुत अच्छी रहती है। इससे रक्त सम्वन्धी विकार नहीं होते।

महानीम (वकायन) की दातौन के भी लगभग वे ही लाभ होते हैं जो नीम की दातौन के वर्णित किये हैं।

२—खदिर की दातौन

कषैले वृक्षों में खदिर (खैर) की दातौन श्रेष्ठ मानी है। खदिर का संस्कृत में एक नाम दन्तधावन भी है। भावप्रकाश निघण्टु में खदिर शीतल, दांतों को हितकारी, कडुआ, कषैला और खुजली, खांसी, अरुचि, मेद (चर्बी), कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण श्वेत कुष्ठ,सूजन आम, पित्त, रक्तविकार, पांडु रोग, कफ तथा कोढ़ को नष्ट करता है। इसलिये जिसको कोढ़ वा मेद (मुटापा) रोग हो और इसी प्रकार रक्तदोष के रोगी और चर्मरोगियों को खदिर वृक्ष की दातौन करनी चाहिये। खदिर की दातौन मुख के छालों और मसूड़ों

की पीप को दूर करती है। कफ प्रकृतिवाले मोटे (फूले हुये) मनुष्य के लिए भी खैर की दातौन लाभदायक है। किन्तु इसका वृक्ष सब स्थानों पर नहीं होता इसलिये सर्व साधारण इससे लाभ नहीं उठा सकते।

३ — बबूल की दातौन

कषाय रसवाले वृक्षों में बबूल (कीकर) का वृक्ष भारतवर्ष के सभी भागों में पाया जाता है। इसकी दातौन प्रायः सभी लोग करते हैं। बबूर भी इसी का नाम है। इसके गुणों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह एक ऐसा वृक्ष है कि जिसकी दातौन बिना भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य कर सकता है क्योंकि यह सभी के लिए हितकारक है। भावप्रकाश निघण्टु में लिखा है—

"बब्बूलः कफनुद् ग्राही कुष्ठकृमिविषापहः"।

अर्थात् बबूल (कीकर) ग्राही और कफ, कोढ़, कृमि तथा विषनाशक है। निघण्टुरत्नाकर में लिखा है—

बबूल कड़वा, कषैला, मीठा, चिकना, ठण्डा, तीक्ष्ण, ग्राही, आमातिसार और रक्तातिसार को बन्द करने, कफ, कास, उष्णता, दाह, वायु और प्रमेह को दूर करनेवाला है। अर्श के लिए भी हितकर है। बबूल सर्वत्र प्राप्य है और सभी प्रकृतिवालों के अनुकूल पड़ता है। दातौन में जो गुण होने चाहिएं वे सभी इस में हैं। इसलिए इसकी दातौन का प्रचार भारतवर्ष में प्रचीनकाल से चला आता है। आज भी भारत में शिक्षित वा अशिक्षित और सभी मतों के अनुयायी इसकी दातौन का प्रयोग करते हैं। यथार्थ में कीकर की दातौन में सारे ही गुण कूट-कूट कर भरे हैं। दांतों के लिए हितकारी, तिक्त, कषाय, मधुर और कटुक प्रायः चारों ही रस इसमें पाये जाते हैं। कीकर की दातौन जहां दांतों को अत्यन्त शुद्ध करती है वहाँ साथ ही इसका प्रयोग पाचनशक्ति को बढ़ाता है। रक्त

को शुद्ध करता है। मुख के अन्दर छाले नहीं पड़ते। कफ और कास को दूर करता है। प्रमेह को नष्ट करता है। मस्तिष्क वा नेत्रों को ठण्डक पहुंचाता है। मसूड़े और दांतों को कृमिरोगों से सुरक्षित रखता है। हमारे विचार में प्रत्येक मनुष्य को सदैव बबूल की ही दातौन करनी चाहिये।

४—महुवे की दातौन

मीठे वृक्षों में महुवे की दातौन श्रेष्ठ माना है। यह मुख को शुद्ध करती है और मुख के छाले, मसूड़ों की उष्णता, और सूजन को दूर करती है।

५—करञ्ज की दातौन

चर्परे (कटु) रस के वृक्षों में करञ्ज की दातौन श्रेष्ठ होती है। यह अर्श, रक्तदोष और कफ को नष्ट करती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् जब विषमज्वर (मलेरिया) फैलता है, उन दिनों में करञ्ज की दातौन करने से मनुष्य विषमज्वर से बचा रहता है।

६—कचनार की दातौन

कचनार की दातौन कफ के रोग और कण्ठरोगियों के लिये विशेषकर कण्ठमाला के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

७—अर्जुन की दातौन

अर्जुन की दातौन हृदय रोगियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है। यह मसूड़ों को शुद्ध करती और दांतों को सुदृढ़ बनाती है।

८—तेजबल की दातौन

यह एक प्रसिद्ध पर्वतीय वृक्ष है। इसकी दातौन बसन्त ऋतु में करनी चाहिये। इसका प्रयोग करने से कफ के रोग नहीं सताते। इसकी दातौन कास और श्वास के रोगियों को बड़ी लाभदायक है। यह मुख की दुर्गन्ध को दूर करती, पाचनशक्ति को बढ़ाती, अर्श और कण्ठ रोगनाशक है। और भी अनेक लाभ हैं किन्तु

यह सब स्थानों पर न मिलने से सब मनुष्य लाभ नहीं उठा सकते।

९—अर्क की दातौन

अर्क (आक) की दातौन बिना किसी वैद्य की सम्मति के स्वयं कभी भूलकर भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि अर्क विषैला होता है। इसकी दातौन बहुत वृद्ध, नशों में फंसे हुये मनुष्य तथा श्वास, कास आदि कफ के रोगियों के लिये लाभदायक हैं।

१०—पीपल की दातौन

पीपल का वृक्ष भारत के सभी भागों में पाया जाता है। यह मीठा, कषैला, शीतल, रूक्ष, भारी, रक्तदोष, जलन, उष्णता, कफ और फोड़े फुन्सियों को दूर करने वाला है। रंग को निखारता है। स्त्रीयोनि को शुद्ध करता है। शरीर का सूखना, राजयक्ष्मा (तपेदिक) और पित्तज्वरों के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

तृतीयक (एक दिन छोड़कर आने वाले) ज्वर में पीपल की दातौन खूब लाभ करती है। जिस दिन तृतीयक ज्वर आने का दिन हो, रोगी एक गज भर लम्बी दातौन लेकर निरन्तर चबाता रहे। ज्वर रुक जाता है। इसकी दातौन से दांत वा मसूड़े सुदृढ़ होते हैं। पुराने ज्वर और राजयक्ष्मा के रोगियों को पीपल की दातौन करनी चाहिये। पीपल की दातौन से मन शान्त और आयु की वृद्धि होती है, दांतों और दाढ़ों की पीड़ा सर्वथा दूर हो जाती है।

लाक्षादि तैल आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग है जिसका शरीर पर मर्दन करने से तपेदिक के ज्वर की जलन रूक्षता और शरीर का सूखना, फुफ्फुस (फेफड़ों) की पीड़ा दूर करने में एक ही औषध है। इस तेल का मुख्य भाग पीपल वृक्ष की लाख ही है।

इसी प्रकार जो दांतों की पीड़ा रोगी को सोने भी न देती हो और किसी औषध से भी न जाती हो, वह लाक्षादि तैल के कुछ

दिन कुल्ला करने से निश्चय से दूर हो जाती है। यह अनेक वैद्यों का अनुभव है।

११—वट वृक्ष की दातौन

वट (वड़) वृक्ष की दातौन के वही लाभ हैं जो पीपल की दातौन के हैं। किन्तु इसकी दातौन प्रमेह रोग के रोगियों के लिये अमृत के समान है। यदि प्रमेह के रोगी निरन्तर श्रद्धापूर्वक दीर्घ काल तक वट वृक्ष की दातौन करें तो उनको अत्यन्त लाभ होगा।

१२—मौलसरी की दातौन

मौलसरी को संस्कृत में वज्रदन्ती कहते हैं। वज्र संस्कृत में हीरे का नाम है। हीरे की सुदृढ़ता और कांति संसार में प्रसिद्ध है। मौलसरी की दातौन दांतों को हीरे के समान कान्तिवाला और सुदृढ़ बना देती है इसलिये इसका नाम वज्रदन्ती है। संस्कृत भाषा में यही विशेष गुण है कि नाम के अन्दर ही गुण निहित रहते हैं। इस प्रकार वज्रदन्ती भी "यथा नाम तथा गुण" वाली लोकोक्ति को पूरा करनेवाला वृक्ष है। दांतों का सम्भव है कोई ही रोग ऐसा हो जो मौलसरी की दातौन से नष्ट न हो सके। इसलिये सबसे अधिक लाभदायक दातौन मौलसरी की ही होती है किन्तु अत्यन्त दुःख की बात है कि इससे वृक्ष सर्वत्र नहीं मिलते। ऐसी अवस्था में बबूल की ही दातौन अथवा नीम आदि अन्य वृक्षों की दातौन करें। अथवा जो जहां अधिकता से मिलता हो और जिसकी चवाने से अच्छी कूंची बन जाये और वह स्वास्थ्य के लिये भी हानिप्रद न हो, ऐसे किसी वृक्ष की दातौन की जा सकती है।

दातौन करने की विधि

यह बात ध्यान रखने की है कि दातौन विधिपूर्वक न करने से चाहे दातौन मौलसरी आदि कितने ही अच्छे वृक्ष की हो यथार्थ

लाभ नहीं होता। जितनी लम्बी और मोटी दातौन हमने लिखी है; उस प्रकार की दातौन लेकर दोनों ओर को दाढ़ों से शनैः शनैः कुचलकर कोमल कूंची बनालें। दातौन छिलके सहित करें उसका छिलका कभी न उतारें। कोई कोई मनुष्य पत्थर आदि से कूटकर कूंची बनाते हैं यह उचित नहीं। दातों से चबाकर कूंची बनाने से मुख तथा दांतों का व्यायाम होता है। दांतों की जड़ें, सुदृढ़ होकर ये वृद्ध अवस्था तक काम देते हैं। कूंची को शुद्ध करके समस्त दाढ़ और दांतों को अन्दर बाहर से धीरे धीरे भलीभांति प्रत्येक दांत को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे रगड़ रगड़ कर शुद्ध करें। इस प्रकार दांतों को खड़े और ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर घिसने से शीघ्र शुद्ध होते हैं। "दन्तान् पूर्वमधो घर्षयेत्" से ज्ञात होता है कि पार्श्वों में दातौन नहीं फेरनी चाहिये। अर्थात् दक्षिण से वाम और वाम से दक्षिण को दातौन न करें। बीच बीच में दातौन को शुद्ध जल से धोते भी जायें। आदि से अन्त तक बिना धोये मैल की दातौन करने से हानि हो सकती है। यदि मुख में कोई रोगी दांत हो तो उसके मैल से अन्य दांत भी रोगी हो जाते हैं। इसलिये दातौन धोने के लिये जल सदैव साथ लेकर बैठें। बिना जल के दातौन कभी न करें।

मसूड़ों पर भी दातौन को रगड़ना चाहिए। किन्तु इस प्रकार रगड़ें कि दातौन की रगड़ से मसूड़े फूट या छिल न जायें। दातौन करते समय जो मुख से राल थूक आदि मल निकले उसे नीचे गिराते जायें। जिससे वायु आदि का दूषित मल सब निकल जाये। दातौन करने का उद्देश्य मुख और दांतों की भलीभांति शुद्धि करना है। दातौन करते समय दातौन करने में ही ध्यान होना चाहिये। लोग दातौन करने में घण्टों लगा देते हैं। मुंह में दातौन डाली और इधर उधर घूमते रहे। साथ ही साथ गप्पें भी मारते रहें। इतस्ततः थूक

थूक कर स्थानों को गन्दा करने और रोग फैलाने का कारण बनते हैं। राल वा थूक एक अमूल्य वस्तु है,दातौन मुंह में डालकर यों ही थूकते रहना कितनी मूर्खता का कार्य है। यह थूक पेट में जाकर भोजन में मिलकर उसे कितना शीघ्र पचाने के योग्य बनाता है, यदि वे इस महत्वपूर्ण बात को जानते हों तो ऐसी भूल न करें। यदि विधिपूर्वक दस मिनट ध्यान देकर दातौन करलें तो पर्याप्त है क्योंकि भोजन के पीछे जल से अच्छी प्रकार कुल्ली करके दांतों को साफ करलें तो थोड़ी देर दातौन करने से कार्य चल जाता है। क्योंकि हमारे भोजन का जो थोड़ा वहुत अंश दांतों में उलझा हुआ रह जाता है, वही दांतों पर या उनकी सन्धियों में इक्कठा हो जाता है। कुल्ले और दातौन इसी मल को दूर करने के लिये किया जाता है। यदि यह कुल्ले और दातौन से शुद्ध न किया जाये तो दांतों की जड़ों और सन्धियों में पड़ा हुआ सड़ने लगता है। उनको मैला और रोगी कर देता है। ऐसे ही मनुष्य के मुख में से दुर्गन्ध आया करती है। मल और दुर्गन्ध के रहने के लिये दांतों की जड़ व सन्धियों के अतिरिक्त मुख में कोई और स्थान नहीं है। यह दुर्गन्ध स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाती है। जिसके मुख से दुर्गन्ध आती हो समझलो कि इस के दांत ठीक नहीं हैं। जिनके दांत शुद्ध नहीं होते उनके दाँतों में से दूषित तत्व और दुर्गन्ध के करण भोजन करते समय थूक में मिलकर पेट में पहुँचेंगे और जो भोजन पचने के लिये पेट में पहुँच चुका है उसे भी दूषित कर डालेंगे। क्योंकि हमारे मुख के अन्दर गालों में थूक (लाला) उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियां हैं। उनसे सदैव थूक (रस) निकलता रहता है, जो मुख को तर रखता है। यह थूक ग्रन्थियों में से निकलकर दांतों में से होता हुआ भोजन के साथ पेट में जाता है और पाचनक्रिया में सहायक होता है। दांतों के शुद्ध न

होने से थूक के साथ दूषित मल जो एक प्रकार का विष है, पेट में पहुँचकर भोजन को दूषित वा विषाक्त कर डालता है, जिससे शरीर की रस, रक्त आदि सभी धातुयें दूषित होकर मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और "शरीरं व्याधिमन्दिरम्" शरीर रोगों का घर बन जाता है। ऋषियों के देश इस भारत की कितनी दुर्दशा है कि सौ में से एक व्यक्ति भी अपने दांतों की शुद्धि की ओर ठीक ध्यान नहीं देता। इसलिए जिधर भी देखो पीले पीले गन्दे मैले दांत वालों को देखकर जी घबराता है। ग्लानि व घृणा उत्पन्न होती है। किसी किसी के मुख में से तो असह्य दुर्गन्ध आती है।

दक्षिण भारत में मैंने स्वयं देखा है कि प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक तम्बाकू डाल-डाल कर बकरी के समान पान चबाते रहते हैं। वे भले मानुष एक साथ पांच पाँच सात सात पानों के बण्डल बलपूर्वक मुख में ठोंसते हैं और ऊपर से सिग्रेट बीड़ी की भी भरमार करते हैं उनके दांत इतने काले और मलीन होते हैं कि जिनको देखकर मनुष्य को वमन आजाये। उनके मुख की दुर्गन्ध का कहना ही क्या। उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है। भला ऐसे लोगों का स्वास्थ्य क्या कभी स्वप्न में भी ठीक रह सकता है? आश्चर्य की बात तो यह है कि दक्षिण भारत ही क्या, मध्य भारत, मालवा और बङ्गाल की भी ऐसी ही दुर्दशा है। वहां पर कोई बिरला ही मनुष्य कभी भूलकर ही दातौन करता होगा। इसलिये इन प्रान्तों का स्वास्थ्य अन्य प्रान्तों की अपेक्षा गिरा हुआ है। मुनिवर चाणक्य की लोकोक्ति के अनुसार—

"- दन्तमलोपधारिणं···विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।"
(चाणक्यनीति अ० १५ श्लोक ४)

जिसके दांतों का मैल है अर्थात् जिसके दांत शुद्ध नहीं उसको

श्री अर्थात् लक्ष्मी, शोभा, सुन्दरता, कान्ति, मन, बुद्धि, विद्या, धर्म अर्थ, काम, मोक्षरूप सम्पत्ति आदि सम्पूर्ण ऐश्वर्य छोड़कर चले जाते हैं। इसलिए स्वास्थ्य तो गया, दरिद्रता महारानी ने भी वहां डेरा जमाया है। जिन प्रातों में दातौन करने का अच्छा प्रचार है उन पंजाब, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि की दृष्टि से उपर्युक्त प्रांतों से अच्छी अवस्था है। अतः देश की शारीरिक उन्नति और स्वास्थ्य सुधार के लिये सर्वत्र लोगों में प्रतिदिन दातौन करने का प्रचार करना चाहिये और इस प्रकार की प्रतिज्ञायें कि "मैं दातौन किये विना भोजन न करूंगा" स्वयं करनी तथा लोगों से करानी चाहियें।

दातौन द्वारा जिह्वा शुद्धि

जब दातौन से दांत खूब साफ कर लें तो दातौन को धोकर उसको बीच में से चीर कर दो भाग कर लें। एक भाग को मध्य में से मोड़ कर उसके दोनों सिरे दोनों हाथों से पकड़कर चिरे हुए चपटे भाग से धीरे धीरे जीभ को घिसकर जमे हुए सफेद मैल को छुड़ा देवे और दातौन के दूसरे चिरे हुए भाग से (सीधी लकड़ी से) जीव को कण्ठ तक शुद्ध कर डालें। पुनः दातौन को धोकर फैंक देवें दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुली को मुख में दूर तक डाल कर कण्ठ को कफ आदि को बाहर निकाल डालें। फिर एक अंगुली से जिह्वा के नीचे के भाग को धीरे धीरे घिसकर शुद्ध कर डालें। हाथ के अंगुठे से ऊपर की ओर के तालु को घिसकर शुद्ध करें। पुनः मुख के अन्दर जल भर कर खुब हिला-हिलाकर कुल्ली करें। इस प्रकार से करने से मुख का सब मल दर होकर दुर्गन्ध रहित हो जाता है। जहां शुद्धि होती है वहां साथ साथ मुख का अच्छा व्यायाम भी हो जाता है।

दन्तमर्दन

दांत, दाढ, दांतों की जड़ और मसूड़ों को अन्दर और बाहर से दायें हाथ की तर्जनी अंगुली से कुछ देर भली-भांति प्रतिदिन मर्दन (मालिश) किया करें। इस मर्दन से दांतों को बहुत ही लाभ पहुँचता है। दांत और दांतों की जड़ें सुदृढ़ हो जाती हैं। पायोरिया (दांतों में खून वा पीप निकलना) आदि रोग नहीं सताते। दांतों की आयु बढ़ती है। दातौन के पश्चात् इसे प्रतिदिन करें तो यह क्रिया सोने पर सुहागे का कार्य देती है।

एक बात का सदैव ध्यान रखें दातौन करने के समय, कुल्ला आदि करते समय सदैव शीतल जल का प्रयोग करें। जो मनुष्य नित्य प्रति दातौन करते हैं उनके दांत तथा शरीर तो सदैव नीरोग और स्वस्थ रहते ही हैं, साथ ही दातौन करने से नेत्रों का मैल और विष प्रतिदिन निकलता रहता है जिससे आंखें शुद्ध और निर्मल हो जाती हैं। नेत्र ज्योति बढ़ती है और चक्षु सम्बन्धी कोई भी रोग नहीं होता। यहां तक कि आंख भी नहीं दुखती और मुख की शुद्धि भली प्रकार होने से मुख सम्बन्धी रोग भी नहीं सताते। दांतों और नेत्रों का कितना निकटतम सम्बन्ध है, इसे थोड़े ही लोग जानते हैं। दांतों के दूषित होने से आंखों में भी अनेक दोष और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यहां तक कि मनुष्य अन्धा भी हो जाता है। इसका एक उदाहरण अपने दांत विषयक व्याख्यान में 'सर हैरी वाल्डविन' ने दिया था। उसे नीचे दिया जाता है :—

"केथरिन ब्राउन नाम्नी एक स्त्री है। बचपन में वह दन्तरोग से पीड़ित थी। धीरे-धीरे उसके नेत्रों की ज्योति कम होने लगी और जवानी आते-आते तो वह बिल्कुल अन्धी हो गई। उसकी आंखें सुधारने के लिए बहुत सी चेष्टायें की गईं, किन्तु सफलता नहीं मिली। जब उसने अपने दांतों को उखड़वा दिया तब उसे उसका खोया हुआ स्वास्थ्य फिर प्राप्त हो गया।"

इसी प्रकार एक सज्जन मेरे मिलनेवाले थे। चिकित्सार्थ श्री वैद्य कर्मवीर जी के पास 'नरेला' आये। न जाने कितने वैद्यों और डाक्टरों के पास घूमघाम कर पर्याप्त धन खो चुके थे। उनकी पाचन-शक्ति सर्वथा बिगड़ चुकी थी। भूख लगती ही न थी। यकृत्(जिगर) के दूषित होने से रक्त आदि धातुयें भी न बनती थीं। प्रत्येक समय उदर और सिर में पीड़ा रहती थी। कास (खांसी) और हल्का-सा ज्वर भी हर समय बना रहता था। इसी प्रकार अनेक रोगों ने तथा दुर्बलता ने डेरा जमा रखा था। जीवन से निराश और अत्यन्त दुःखी थे। किसी भी औषध से लाभ न हुआ। बात यथार्थ में यह थी कि उनके दांत सर्वथा दूषित और रोगी थे। इस ओर किसी वैद्य का भी ध्यान नहीं गया। जब उनके दांतों की चिकित्सा की गई तब दांतों के रोगों के साथ ही सारे रोग, नौ-दो-ग्यारह हो गये और वह सज्जन सर्वथा स्वस्थ हो गया।

जादू की लकड़ी

प्रत्येक व्यक्ति को उपरोक्त उदाहरणों से शिक्षा लेनी चाहिये और प्रतिदिन नियम से दातौन करते हुए अपने दांतों को शुद्ध, पवित्र, स्वस्थ और सुदृढ़ बनाना चाहिए, क्योंकि दांतों का आरोग्य और सुदृढ़ता शुद्धि पर निर्भर है और शुद्धि करने के लिए दातौन ही जादू की लकड़ी है। इसलिए स्वस्थ और ब्रह्मचर्य प्रेमी व्यक्ति को दातौन करना अपनी दिनचर्या का आवश्यक अंग समझना चाहिये। क्योंकि अस्वस्थ मनुष्य ब्रह्मचर्यरक्षा में कभी सफल नहीं हो सकते।

दातौन और स्वास्थ्य का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह भली-भांति सिद्ध कर चुके हैं। हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि ब्रह्म-चारी ही क्या सभी मनुष्यों का प्रतिदिन दातौन द्वारा दांतों की शुद्धि करना एक परमावश्यक कर्तव्य है। दांतों को स्वस्थ, शुद्ध और

सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए।

आवश्यक बातें

(१) भोजन सदैव ताजा और ठण्डा करके खाओ। उष्ण (गर्म) भोजन के चबाने से दांतों की जड़ें निर्बल हो जाती हैं।

(२) इसी प्रकार बर्फ मिला हुआ ठण्डा पानी दातों की जड़ों को निर्बल करता है।

(३) गर्म वस्तु खा-पीकर ऊपर से ठण्डा वा बर्फ का पानी पीना समस्त दांतों के रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

(४) सदैव कोमल, मीठे और चर्परे खाने वाले के दांतों में भी अनेक रोग हो जाते हैं। भुने हुए जौ, मक्का आदि चबैना खाते रहने से दांतों की शक्ति बनी रहती है, क्योंकि इससे दांतों का व्यायाम होता है।

(५) भोजन सदैव चबा-चबाकर खाना चाहिये। इससे भोजन भी शीघ्र पचता है और दांतों का व्यायाम होने से दांत स्वस्थ और सुदृढ़ रहते हैं। परमात्मा ने दांत इसी प्रयोजन के लिए तो दिये हैं। जो दांतों से काम नहीं लेते उनके दांत और आंख दोनों ही खराब हो जाते हैं और स्वास्थ्य बिगड़ने का मुख्य कारण यही है।

(६) जिनके दाँत लम्बे होते हैं, प्राय: उनके दांतों पर तथा दांतों की जड़ों में एक प्रकार का मैल (सफेद पपड़ी सी) जम जाया करती है। दो-चार मास में स्वयं दर्पण में देखकर चाकू की नोक से वा सूई आदि से धीरे-धीरे कुरेद कर मैल निकाल डालना चाहिए। अथवा यह कार्य किसी वैद्य, डाक्टर वा अपने योग्य मित्र द्वारा भी करवा सकते हैं।

(७) भोजन के उपरान्त जल से बार-बार कुल्ली करके मुख

और दाँतों को शुद्ध कर देना चाहिए जिससे भोजन का अंश दांतों की जड़ों और सन्धियों में पड़ा रहकर दांतों के खराब होने का कारण न बने।

(८) भोजन के पीछे तत्काल ही, चढ़े हुए ज्वर में शीतपित्त (छपाकी) होने पर दातौन नहीं करनी चाहिए।

(९) खटाई, मिठाई एक साथ मिलाकर खाने अथवा अधिक खाने से भी दांत खराब हो जाते हैं।

(१०) दांतों को रोगी (दूषित) करने में मीठा, मीठे विष का कार्य करता है। मीठा अधिक खाने वालों के दांत सदैव दूषित और रोगी रहते हैं और शीघ्र ही टूट जाते हैं। ऐसे ही लोगों के दांतों में असह्य पीड़ा रहा करती है। जो उनको क्या उनके पड़ोसियों को भी सुख से नहीं सोने देती।

(११) चाय स्वास्थ्य तथा दांतों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। चाय पीनेवाले इसे खूब गर्म-गर्म पीते हैं। कुछ लोग तो इतनी गर्म पीते हैं, यदि उसको कोई साधारण मनुष्य पीये तो उसका मुख जिह्वा, कलेजा आदि सब जल जायें। इसलिए प्रथम तो चाय ही हानिकारक और दूसरे इसे गर्म-गर्म पीना "करेला और नीम चढ़ा" वाली बात इससे सिद्ध होती है। यह दांतों का सर्वनाश कर डालती है।

चाय और मांस के सेवन के कारण प्रायः सभी योरुपियन लोगों से पायोरिया बड़ा प्रेम करता है। इसलिए उन्हें युवावस्था में ही दांतों से हाथ धोना पड़ता है और अप्राकृतिक (नकली) दांत ही उनके मुख की शोभा बढ़ाते हैं। चाय और मांस के भक्त भारतीयों की भी ऐसी ही दुर्दशा होती है।

(१२) इसी प्रकार तम्बाकू, बीड़ी, सिग्रेट आदि का सेवन भी दांतों के लिए अत्यन्त घातक है। तम्बाकू का खाना और पीना दोनों

से ही दांतों को हानि होती है। ब्रह्मचारी क्या सभी विचारशील मनुष्यों को इन विषैले पदार्थों से सदैव दूर रहना चाहिए।

आठ-दस दिन में एक बार दातौन की कूंची को किसी उत्तम मंजन में भर-भर कर दांतों को साफ करना चाहिए। दन्तमञ्जन न मिले तो हल्दी और नमक दोनों समभाग ले बारीक पीसकर इससे दांतों को शुद्ध करना चाहिए। तिल अथवा सरसों के तैल से दातौन को भरकर दांतों पर रगड़ने से दांत तथा उसकी जड़ शुद्ध और दृढ़ होती हैं। सरसों के तैल में सूक्ष्म (बारीक) पिसा हुआ सैंधानमक मिलाकर अंगुली से दांतों और दाढ़ों को भीतर और बाहर सब ओर लगाकर मलना चाहिये। फिर पीछे कुल्ला कर डालें। इससे दांत शुद्ध और दृढ़ होते हैं।

मंजन

कभी दातौन न मिलने पर किसी विशेष अवस्था में दांतों को शुद्ध करने के लिए कुछ लाभदायक योग पाठकों के लाभार्थ लिख देता हूं। इनका स्वस्थ अवस्था में भी दातौन के समान लाभ होता है।

१—मंजन का सरल योग—

इस मंजन का साधारण अवस्थाओं में दातौन के स्थान पर भी प्रयोग किया जा सकता है। यह सर्वत्र बिना किसी मूल्य के प्राप्त हो सकता है। योग बहुत ही अच्छा है। गौ के गोबर के उपलों की भस्म (राख) लेकर कपड़छान कर लें। यदि जंगली आरनों* की भस्म उपलब्ध हो तो क्या कहना है। वही मंजन है। इसको मंजन की आवश्यकता पड़ने पर दांतों और मसूड़ों पर मंजन की भांति मलकर शुद्ध जल से कुल्ला करें। "हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा दे" वाली बात इस मंजन पर घटती है। यह बिना पैसे का

---

*गायें बहुधा जंगल में चरने जाती हैं और वहीं गोबर कर देती हैं। यही गोबर जब पड़ा-२ सूख जाता है तो आरनों का नाम धारण कररता है।

मंजन दांतों को इतना शुद्ध कान्तिमय (चमकीला) बना देता है कि जिसके आगे बहुत मूल्यवान् (महंगे) मंजन भी फीके पड़ जाते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इसके प्रयोग से दांतों के कृमि (कीड़े) दूर हो जाते हैं। दांत और मसूड़े सर्वप्रकार के मलों से शुद्ध और पवित्र होकर सदैव रोगों से सुरक्षित रहते हैं। दांतों की पीड़ा और रोगों के दूर करने में यह रामबाण है।

बड़ी-बड़ी रसायनशाला (फार्मेसी) और औषधालयों के स्वामी तथा बड़े-बड़े वैद्य भी इसका प्रयोग करते हैं। दांतों की पीड़ा दूर करने में यह जादू का असर करती है।

गुरुकुल रावल की एक घटना है। एक आर्य संन्यासी दांतों की पीड़ा के कारण अत्यन्त कष्ट में थे। उनको किसी प्रकार भी शान्ति न होती थी और कई दिन से सोये नहीं थे। मैं भी कार्यवश वहाँ गया हुआ था। इस घोर कष्ट के कारण उनके मुंह से जो शब्द निकल रहे थे उन्होंने मेरी निद्रा भंग कर दी। मैंने उस समय जैसी भस्म प्राप्त हुई उसका प्रयोग करा दिया। उसी समय वे शान्त होकर सो गये और उनका कष्ट दूर हो गया।

२—मंजन का द्वितीय योग—

इस मंजन का भी दातौन के स्थान पर प्रतिदिन प्रयोग कर सकते हैं। यह भी सरल, सस्ता और सुगम है। किसी भी लकड़ी का कोयला एक भाग, फिटकरी सफेद भुनी हुई आधा भाग, नमक सैंधा चौथा भाग अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) पीसकर वस्त्र से छान लें। यही मंजन है। समय पर उपयोग में लायें। यह दांतों को मोतियों के समान कान्तिमय बना देता है और सब रोगों से सुरक्षित रखता है।

३—मंजन का प्रसिद्ध योग—

मंजन का यह योग बहुत ही प्रसिद्ध और लाभदायक है।

लगभग दांतों के सभी रोगों के लिए यह बहुत अच्छी औषध है। भारत के साधारण लोग भी इसे जानते हैं। किन्तु दुःख की वात है कि इसका प्रयोग नहीं करते। मैंने यह मञ्जन पर्याप्त मात्रा में बनाकर अनेक रोगियों पर इसका प्रयोग किया है। यह मञ्जन लगभग दांतों के सभी रोगों की अचूक औषध है। दांत और दाढ़ की पीड़ा इसके मलते ही भाग जाती है। मसूडों के भी सब दोष दूर होते हैं। दांत अत्यन्त शुद्ध, वज्र के समान सुदृढ़, रोगरहित और मोतियों के समान कान्तिमय हो जाते हैं। वह प्रसिद्ध योग यह है;–

त्रिफला त्रिकुटा तूतिया, पांचों लवण पतंग।
दांत वज्र सम होत हैं, माजूफल के संग॥

बड़ी हरड़ का छिलका, आंवले का छिलका, बहेड़े का छिलका ये सब शुष्क हों। सोंठ, पीपल बड़ा, काली मिर्च, नीला थोथ! भुना हुआ, पांचों लवण (नमक), पतंग (लकड़ी) और माजू इन सब औषधियों को समतोल लेकर अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण करें और वस्त्र में छानकर सुरक्षित रखें। कोई-कोई इसमें शेलखड़ी भी मिलाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग करके लाभ उठायें तथा प्राचीन पुरुषों के गीत गायें*।

इरिमेद (दुर्गन्ध खदिर वा काली खैर जिसे रौंझ भी कहते हैं) को छाल ५ सेर कूटकर १६ सेर जल में डालकर अग्नि पर चढ़ायें। पात्र कली वाला हो। जब जल ४ सेर रह जाये, उतार मल छानकर उसमें तिलों का तेल दो सेर डाल दें और निम्नलिखित ओषधियों को कूट छान कर लुगदी बनाकर उसी में डालकर मन्द-मन्द आग जलाते रहें।

---

*यह मंजन बना बनाया गुरुकुल झज्जर से भी मिलता है।

औषधियाँ — काली खैर की छाल, लौंग, गेरू, अगर पद्माख, मंजीठ,लोध, मुलहटी, लाख,नागरमोथा,बड़ की छाल, दालचीनी, जायफल, कपूर, कंकोल, खैर की छाल, पतङ्ग, धाय के फूल, इलायची छोटी, नागकेशर, कायफल प्रत्येक एक-एक तोला। जब केवल तैल रह जाय, उतार कर तैल को निथार कर शीतल होने पर शीशियों में भर दें। [यह तैल गुरुकुल झज्जर से भी मिलता है।] यही आयुर्वेद का प्रसिद्ध योग इरिमेदादि तैल है। इस तैल का एक फाया दांतों की भयंकर पीड़ा को दूर कर देता है। प्रतिदिन इस तैल के प्रयोग से दांत हिलते नहीं और जिसके हिलते हों, उसके पुष्ट हो जाते हैं। दांतों से ठण्डी वस्तु चबाई न जावे; पानी भी लगे, ठण्डी वायु भी सहन न होती हो, दांतों से रक्त जाना (पायरिया) पीप आना, दांतों का भुरभुराना, दांतों से दुर्गन्ध आना, मसूड़ों की सूजन, दांतों को कीड़े (कृमि) लगना, इत्यादि दांतों और मसूड़ों के सभी रोगों की रामबाण औषध है। यह जिह्वा, तालू, होठ के रोगों को भी दूर करता है। इस तैल को अंगुली से दांत और मसूड़ों पर अन्दर बाहर मलना चाहिए। इसके प्रयोग से काले, पीले, मैले दांत भी शुद्ध चमकीले हो जाते हैं। दांतों के रोगों की अद्भुत औषध ऋषियों की कृपा से मिली है, प्रयोग करें और लाभ उठायें।

दांतों की शुद्धि पाचन क्रिया को ठीक रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि पाचन शक्ति ठीक कार्य नहीं करती तो ब्रह्मचर्य पालन करना अथवा स्वस्थ रहना असम्भव है। अतः प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी को दांतों की शुद्धि और रक्षार्थ इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये।

॥ इति ॥

मुद्रक—आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक। फोन २८७४

प्राक्कथन

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जीवात्मा के अन्तःकरण हैं। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां बाह्य करण हैं। ज्ञान और प्रयत्न जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इन दोनों के विकास के लिए उपर्युक्त दोनों प्रकार के करण प्रमुख साधन हैं। अतः यह आवश्यक है कि अन्तः और बाह्य करणों को ठीक अवस्था में रखा जावे। इन दोनों करणों का प्रयोग जीव अपने शरीर के आश्रय पर ही करता है। शरीर को सबल और सुदृढ रखने में प्राण पर अधिकार रखना परमावश्यक हैं। प्राणों के रहते ही जीव, शरीर और अन्तः तथा बाह्यकरणों से कार्य करने में समर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर और प्राणों को सुनियमों में रखना मानव का परम कर्तव्य है। इन्हीं नियमों में एक नियम व्यायाम है।

व्यायाम के अनेक भेद हैं। मनुष्य अपनी अवस्था, देश और काल भेद से यथारुचि व्यायाम की छाँट कर सकता है। स्वस्थ मानव के लिए सामान्य रूप से व्यायाम एक समान ही लाभदायक है। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने लोक कल्याण के लिए व्यायाम का बड़ा वैज्ञानिक क्रियात्मक विवेचन किया है। प्राचीन व्यायाम पद्धति के स्वीकार करने पर शरीर और प्राण बलिष्ठ होते हैं जिनके कारण मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस् प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

जहां हमने भारतीय संस्कृति के अन्य अंगों को छोड़कर पाश्चात्य विदेशी सरणि को ग्रहण किया, उसी भांति स्वदेशी व्यायाम रीति को त्यागकर विदेशी खेलों की ओर झुक गये। देशी और विदेशी व्यायाम में प्रत्यक्ष भेद यह है कि देशी व्यायाम को एक अकेला व्यक्ति भी कर सकता है, व्यय कुछ नहीं, शारीरिक लाभ के साथ साथ मानसिक और आत्मिक उन्नति भी होती है। थोड़े स्थान में कहीं भी देशी व्यायाम किया जा सकता है। देशी सामाजिक व्यायाम में भी सब

वैयक्तिक गुण हैं। परन्तु विदेशी व्यायाम सब खर्चीले हैं। अकेला व्यक्ति उनसे कुछ लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। इनसे आत्मिक और मानसिक लाभ का तो नाम भी नहीं।

व्यायाम बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री और पुरुष सब के लिए जहां परम हितकर है, वहां युवकों के लिए तो प्राणप्रद ही है। आर्य जाति में फिर से व्यायाम पद्धति का प्रचलन होवे और हमारा राष्ट्र विश्व में अग्रणी बन सके—इसी पवित्र भावना से प्रेरित होकर यह व्यायाम सरणि जनता के सम्मुख प्रस्तुत की जारही है। इन कुछ पृष्ठों में व्यायाम का स्थूल रूप प्रकट किया जारहा है। इसमें यथारुचि और यथाशक्ति किसी भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रयोग करके अपूर्व लाभ का प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

व्यायाम केवल मानसिक अथवा काल्पनिक विषय नहीं है। यह तो शत प्रतिशत क्रियारूप है। व्यायाम शब्द का स्थूल और सूक्ष्म अर्थ भी यही है। अतः प्रेमी पाठक महानुभावों से हम निवेदन करना चाहते हैं कि केवल ज्ञानवर्धन के लिये ही इन पंक्तियों को न पढें अपितु पढ़कर इन पर स्वयं नियमित रूप से आचरण करें और करावें।

यह ध्यान रखने की बात है कि व्यायाम का अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये, तभी यथेष्ट लाभ हो सकता है। एक दो दिन या थोड़े अभ्यास से पूर्ण लाभ की आशा नहीं रखनी चाहिये। अभ्यास करते समय पहिले पहिले मन में अरुचि और शरीर में शिथिलता होने पर भूलकर भी इसका त्याग न करें। कुछ दिन के अभ्यास से ही रुचि होने लगेगी तथा शरीर में बल और ओज की उत्पत्ति एवं वृद्धि स्पष्ट प्रतीत होने लगेगी। अच्छा अभ्यास होने पर व्यायाम को छोड़ने में क्लेश अनुभव होने लगेगा। कुछ व्यायाम तो इनमें ऐसे हैं चाहे जहां बैठे करें और लाभ उठायें।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे युवक और युवतियां व्यायाम मार्ग पर चलते हुए ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनकर अपना कल्याण और राष्ट्र का मान बढ़ायेंगे।

ब्रह्मचर्य के साधन

[चतुर्थ भाग]

व्यायाम सन्देश

विषय प्रवेश

शौच दन्तधावन और मुख आदि अङ्गों की शुद्धि के पश्चात् और स्नान से पूर्व प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति विशेषतः ब्रह्मचारी को नियमित शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। साधारणतया-चाहे स्त्री हो वा पुरुष, जो भी भोजन करता है, उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी भोजन की। इसका कारण स्पष्ट है, शरीर में व्यायामरूपी अग्नि न देने से भोजन ठीक नहीं पचता और वह शरीर का अङ्ग न बनकर उलटा हानि ही करता है। क्योंकि जिन खाद्य पदार्थों से रक्त आदि धातुओं का निर्माण होकर बल और शक्ति का सञ्चय होता है, उनके ठीक न पचने से वे सड़ने लगते हैं और शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करके जहां अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं वहां मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के दुष्ट विचारों को भी जन्म देते हैं, जिससे मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर स्मरणशक्ति भी मन्द हो जाती है और उसे अपने कर्तव्य-कर्म का ज्ञान नहीं रहता। परिणामस्वरूप वह दुःखदायी विषयभोगों में फंस जाता है और यह विषय-वासना की अग्नि मनुष्य के स्वास्थ्य, शक्ति, सुन्दरता, स्फूर्ति और साहस आदि सद्गुणों को जलाकर

भस्मसात् कर डालती है। यहाँ तक कि मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु युवावस्था भी इसी की भेंट चढ़ जाती है। दुःखदायी बुढ़ापा आ घेरता है। मनुष्य का शरीर आलस्य, निर्बलता और रोगों का घर बन जाता है। जिससे लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं।

स्वास्थ्य का महत्त्व

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।" मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाला "पुरुषार्थ चतुष्टय" अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य ही है। क्योंकि रोगी मनुष्य सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये न तो कृषि आदि व्यवसाय (धन्धे ही कर सकता है और न सन्ध्या, ईश्वरोपासना, ब्रह्मचर्य-पालन आदि धर्म-कर्म जो मोक्षप्राप्ति के साधन हैं उनके अनुष्ठान में समर्थ होता है। इसलिये संसार में सर्वोत्तम और सर्वप्रिय वस्तु स्वास्थ्य ही है। सांसारिक धनैश्वर्य तथा भोगविलास के सब साधनों के विद्यमान होने पर भी रोगी उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता, उलटा उनको देख-देख कर दुःखी ही होता है। रोगी मल-मूत्र त्याग आदि आवश्यक कार्यों को भी दूसरे मनुष्यों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। उसे प्रतिक्षण दूसरों का सहारा चाहिये और इस हर समय की पराधीनता के कारण रोगी का जीवन शुष्क, नीरस और अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। रोगी होना ही साक्षात् नरक के दर्शन करना है। क्योंकि "सर्वं परवशं दुःखम्" "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं हैं। स्वस्थ मनुष्य के लिये यह संसार ही स्वर्ग समान है। रोगी मनुष्य चाहे कितना ही धनी-मानी हो वह सर्वथा पराधीन होने से अत्यन्त दीन और दुःखी रहता है। वह एक दरिद्र, भिखारी से भी गया-बीता है। क्योंकि

उसे अपनी भूलों के कारण घोर नरक (दुःख) भोगना पड़ता है। बात तो यथार्थ में यही है—चाहे मनुष्य दरिद्र ही क्यों न हो, यदि वह पूर्ण स्वस्थ है तो वह धन के अभाव में भी धनवान् है। क्योंकि स्वास्थ्य-धन से बढ़कर कोई धन नहीं है। स्वस्थ मनुष्य ही स्वर्ग (सब सुखों) का उपभोग करता है। इसलिये हमारे पुरुषा ऋषि-महर्षियों ने सांसारिक सुख-अभ्युदय और पारलौकिक सुख-निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन आरोग्य वा स्वास्थ्य को ही माना है। इसलिये स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है और इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

स्वास्थ्य की रक्षा बिना व्यायाम के असम्भव है।

परमपिता परमात्मा ने हमें रोगी और दुःखी होने के लिये नहीं बनाया, हम तो दुःखों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं और पुनः रोते और पछताते हैं। हमने स्वास्थ्य के मूलाधार व्यायाम को जब से छोड़ा तभी से हमारी वह भयंकर दुर्गति हुई है, जिसको लिखते हुए भी लज्जा आती है। आज क्या बालक, क्या युवा, सभी रोगी हैं। क्यों कि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन व्यायाम को छोड़ बैठे और इनके स्थान पर विषयी, भोगविलासप्रिय और कामवासना के क्रीतकिंकर बन चुके हैं। आज के युवक और युवतियां व्यायाम से प्रेम नहीं करते। इन्हें अखाड़े और व्यायामशाला में जाना रुचिकर नहीं। इन्हें तो सिनेमा, थियेटर और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में, सिनेमा घरों के आगे भारी भीड़ लगी रहती है और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। क्या हुआ एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति उधर मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं। हमारे युवक अखाड़ों में जाकर करें भी क्या ? क्यों

कि इन्हें तो दण्ड, बैठक और कुश्ती से इसलिये घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल वा मिट्टी न लग जाये और इनके सुन्दर वस्त्र वा शरीर ही न बिगड़ जायें। ऐसे ही व्यायामभीरु नपुँसकों (हीजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है।

भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्ष भर न चलाया जाये तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है। उसे पुनः चालू करने के लिये नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धनव्यय कर देना पड़ता है, इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम वा कार्य न करने से सर्वथा निर्बल, विकृत और रोगों का घर बन जाता है। पुनः यत्न करने पर भी ठीक होने को नहीं आता। सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है और नदी झरनों का जल चलने के कारण ही निर्मल और कांच के सदृश चमकता है। इसी प्रकार व्यायाम न करने से भी रक्त का सञ्चार भलीभांति नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकार के मल शरीर में रुकने वा एकत्रित होने से रक्त मलीन और गन्दा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। व्यायाम से रक्त का संचार और शुद्धि होती है। सब अंगों में बल, स्फूर्ति और शक्ति आती है। व्यायाम लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल को उत्पन्न करता है, सब अङ्ग प्रत्यङ्गों को पूर्ण और पुष्ट करता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिये सबसे बढ़कर पुष्टिदायक और स्वास्थ्यप्रद है। उचित व्यायाम से प्रायः सभी रोग रुक जाते हैं। आज तक संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ, जिसने बिना व्यायाम के परमारोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। व्यायाम का अभाव वा आलस्य ही रोगों का स्रोत है। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

व्यायाम से लाभ

जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूं. स्वास्थ्य प्राप्ति का मुख्य साधन व्यायाम ही है। अब मैं इसकी पुष्टि में ऋषियों महर्षियों एवं अन्य अनुभवी व्यायाम आचार्यों का मत देता हूं। परम वैद्य महर्षि धन्वन्तरि का मत—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा ।१॥
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥ २॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३९-४०)

अर्थ—व्यायाम से शरीर बढ़ता है, शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है, शरीर के सब अङ्ग सुडौल होते हैं, पाचनशक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है, शरीर दृढ़ और हल्का होकर स्फूर्ति आती है, तथा तीनों दोषों की मृजा (शुद्धि) होती है।

श्रम (थकावट), क्लम (दुःख), प्यास, शीत (जाड़ा), उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षि पतञ्जलि जी चरक संहिता में इसी विषय में लिखते हैं—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेशसहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ,।
(चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ७ श्लोक ३१)

व्यायाम से शरीर में लघुता (स्फूर्ति, हलकापन, फुर्तीलापन), कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दुःखों का सहना, दोषों (कुपित-वात, पित्त, कफ) का नाश और (जठर) अग्नि की वृद्धि होती है।

हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने इन श्लोकों में व्यायाम करने के लाभों का इतनी भली-भांति वर्णन किया है कि मानो गागर में सागर भर दिया है। जो भोजन हम प्रति-दिन करते हैं वह प्रथम हमारे पक्वाशय पेट में जाता है और वहां पेट की अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं खाये हुये भोजन को पकाती है। भोजन पचने पर आमाशय से ही शेष अंगों को पहुंचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता और उसका पचकर रस बन जाता है। पौष्टिक सारभाग को तीव्र जठराग्नि मल भाग में नहीं जाने देती। जिसकी पाचनशक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है उसको भोजन अधिक मात्रा में शीघ्र पचकर रस आदि धातुयें बनती रहती हैं और ये रस, रक्त, --- वीर्य आदि सात धातुएँ शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाती और धारण करती हैं। इसलिए इनको धातु कहते हैं और धातुओं ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रास से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने "आषोडशाद्वृद्धिः" सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया-पीया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अंग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बूढ़ा हो रहता है।

सार यह है—हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मल-

भाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मानुष शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आ जाती है। वह नसनाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खींचती रहती है जिस प्रकार जल को स्पञ्ज (जल शोषक) वा मसि (स्याही) को मसिशोषक (स्याही चूस)। यही उष्णता शरीर में रक्तादि धातुओं का निर्माण और संचार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस-नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ने लगता है, नस-नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं, सम्पूर्ण शरीर में रक्त सञ्चार भली-भांति होता है और यथायोग्य सब अंगों को शक्ति प्रदान करता है। विद्युत् बिना विद्युत्-धारा (current) के सर्वथा निस्सत्व वा शक्तिहीन है, उसी प्रकार रक्त-सञ्चारिणी सब नस-नाड़ियां रक्त-सञ्चार के बिना व्यर्थ हैं। रक्त-सञ्चार विना रक्त बने कैसे ?

रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से; भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम। इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनते हैं। यह रक्त नस-नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता हुआ शक्ति-सञ्चार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इस में यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल-मूत्रादि द्रव्यों को भी बाहर निकाल फेंकती और शरीर को शुद्ध-पवित्र बनाती है। जिस प्रकार मार्जनी (झाड़ू) घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, उसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल-मूत्रादि कूड़े-कर्कट को बाहर निकाल फेंकती है और यह

उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोमकूपादि (मसामों) के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकाल कर ही छोड़ती है। यहां तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

प्रो० राममूर्ति के जीवन की घटना

इस विषय में प्रो० राममूर्ति के जीवन की एक घटना दी जाती है और वह इस प्रकार है कि योरप में इन्हें नीचा दिखाने के लिए कुछ पापियों ने भोजन में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस-पन्द्रह हजार दण्ड निकाल डाले। सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गये।

व्यायाम करने वाले का शरीर अत्यन्त शुद्ध वा निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल-मूत्रादि ठीक रीति से निकल जाते हैं। कभी मल-बन्ध (कब्ज) नहीं होता। उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी वा नहीं। शौच दोनों समय खुलकर आता है। आमाशय वा जठराग्नि को बल देनेवाला सबसे सस्ता और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करनेवाले को मन्दाग्नि का रोग कभी नहीं होता। वह जो भी पेट में डाल लेता है, सब कुछ शीघ्र ही पचकर शरीर का अंग बन जाता है। उसका खाया-पीया घी, दूध, आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर में ही लगता है, टट्टी में नहीं निकलता। अतः उसकी बल-शक्ति दिन प्रति-दिन बढ़ती ही चली जाती है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि

यथायोग्य होती है। शरीर के अङ्गों को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियम पूर्वक किसी भी व्यायाम को करले, तो उसका शरीर सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धापूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं, उनका तो कहना ही क्या। उनके शरीर की सभी मांसपेशियां लोहे की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस-नाड़ियां, सम्पूर्ण स्नायु मण्डल और शरीर का प्रत्येक अङ्ग वज्र वा इस्पात (फौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है। चौड़ी उभरी हुई छाती, लम्बी-सुडौल और गठी हुई भुजायें, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जंघायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्तवर्ण (लाल) मुखमण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अङ्ग यथेच्छ वृद्धि को प्राप्त होकर अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ और सघन बन जाता है। शरीर पर व्यर्थ का मांस वा मेद (चर्बी) चढ़कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता।

व्यायाम की प्रशंसा में ऋषि-महर्षियों का मत

महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं—

न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो भयात्॥

(चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ४१)

अर्थ—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर और कोई औषधि नहीं है, व्यायामी से उसके शत्रु सर्वदा डरते रहते हैं और उसे दुःख नहीं देते।

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति ।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४२)

अर्थ—व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता । व्यायामी पुरुष का शरीर हाड़, मांस सब स्थिर होते हैं ।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर पर पसीना आजाता है और पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उवटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार सिंह से डरकर क्षुद्रमृग (निर्बल मृगादि जंगली पशु) पास नहीं फटकते ।

इसी प्रकार का एक श्लोक व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ काशिका में भी आता है—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगः ॥
(काशिका अध्याय ६ पाद १, सूत्र ६३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर में पसीना आजाता है और जो पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार गरुड़ से डरकर सर्प पास नहीं फटकता ।

वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम् ।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४४-४५)

अर्थ—जो मनुष्य युवावस्था (जवानी), सुन्दरता और वीरता आदि गुणों से रहित है उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य गरिष्ठ, जला हुआ अथवा कच्चा किसी भी प्रकार का खराब भोजन क्यों न हो, चाहे उसकी प्रकृति के भी विरुद्ध हो, सबको भली-भांति पचा लेता है और उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती।

व्यायाम करनेवाले मनुष्य को आप इस प्रकार कहते हुए कभी न सुनेंगे कि मुझे भोजन नहीं पचता वा मल साफ नहीं होता अथवा अपचन रहता है। यह दुर्गति तो व्यायाम न करनेवाले मनुष्यों की ही रहती है। उन्हें कभी शौच खुलकर नहीं आता। अपचन के कारण कभी खुलकर सच्ची भूख नहीं लगती। व्यायाम न करनेवाले लोगों का शरीर प्रायः रोगों का घर ही बना रहता है। उनके सारे जीवन की आय (कमाई) वैद्य, डाक्टरों की ही भेंट चढ़ती है। किन्तु उन्हें स्वास्थ्य और सच्चे सुख के दर्शन जीवन भर कभी भूलकर भी नहीं होते। स्वास्थ्य के बिना कैसा सुख और आनन्द; क्योंकि 'आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।" आदर्श स्वास्थ्य अथवा परम आरोग्य जिसकी प्राप्ति व्यायाम से ही होती है। वही आनन्द और सौख्य का उद्गम है। व्यायाम करने वाले का शरीर केवल स्वस्थ ही नहीं, अपितु अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय भी होता है। व्यायाम से शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ रहता है। उसमें शिथिलता और ढीलापन नाम मात्र भी नहीं रहता। व्यायाम से रंग रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है, बुढापा उसके पास आता हुआ घबराता है, व्यायाम करनेवाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, व्यायामी पुरुष मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है, वह गुणों की खान और

उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना) बन जाता है। आहा ! यदि ऐसा युवक लङ्गोट बान्धकर खड़ा हो जाये तो दर्शकों की यही इच्छा रहती है कि इसके सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीयकान्ति उनके मन को मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्व) वीर्य बना वह भी व्यायाम के द्वारा पचकर रक्त में मिल गया और शरीर का ही अंग बन गया।

"वीर्यं वै बलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश वा पतन की सम्भावना ही नहीं रहती। शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आ जाती है। इसलिए महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है। व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता। फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये।

व्यायाम और दुष्ट विचार

व्यायाम प्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदि किसी को कुसंस्कार-वश बुरे विचार तंग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ कर दे, अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जावे, पुनः देखिए कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबाकर भागते हैं। "आदर्श व्यायामी पुरुष

के सामने दुष्ट विचारों की दुष्टता नहीं चलती।"

कामवासना का वेग कितना भी प्रबल क्यों न हो तत्काल ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है। नीच से नीच मनुष्य यदि नियम-पूर्वक व्यायाम करने लग जाए तो वह स्वयं ही नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है। मनकी चञ्चलता नष्ट होकर वह वश में आ जाता है। मन सब इन्द्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध, पवित्र होकर वश में आ जाता है, तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर वे स्वयं शांत और पवित्र हो जाती हैं। आत्मा को शम और दम की शक्तियां प्राप्त होती हैं, व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो जाती है। वह सर्वथा शुद्ध, पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करने वाले के लिए वीर्य-रक्षा वा ब्रह्मचर्य पालन वामहस्त का कार्य हो जाता है। और ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना मनुष्य के सौभाग्य का उदय होना है। क्योंकि योगिराज महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः" ब्रह्मचर्य-पालन से अपूर्व बल और शक्ति प्राप्त होती है और निर्बलता, आलस्य, प्रमाद आदि दुर्गुण सब दूर भागते हैं।

ब्रह्मचर्य सब शक्तियों और सद्गुणों का भण्डार है, इसलिए ब्रह्मचारी जब ब्रह्मचर्य-पालन के मुख्य साधन व्यायाम को अपनाता है तब उससे जहां उसे ब्रह्मचर्य-पालन में पूर्ण सफलता मिलती है वहाँ उसके निरन्तर व्यायाम करते रहने से उसका परिश्रम करने का स्वभाव भी बन जाता है। वह कठिन से कठिन कार्य हंसते हंसते कर लेता है। उसमें कार्य करने की अदम्य शक्ति, अपूर्व

उत्साह, और स्फूर्ति आ जाती है। व्यायाम से शरीर हल्का-फुलका और फुर्तीला हो जाता है। व्यायाम में यह एक विचित्रता है कि यह अधिक स्थूल (मोटे) मनुष्य को पतला और पतले को हृष्ट-पुष्ट (मोटा) बनाता है। व्यायाम निर्बलता का, जो मनुष्य को अधिक कामी और विलासी बनाती है, परम शत्रु है। निर्बलता उससे कोसों दूर भागती है। व्यायाम करनेवाला मनुष्य थकना वा थककर श्वास चढ़ना वा हांपना क्या होता है, यह जानता ही नहीं। वह पर्वत के समान स्थिर व दृढ़ रहता है। उसके लिए दुःख नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। वह मृत्यु के साथ भी हास्य करता है। पुनः उसके लिए शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी), भूख-प्यास, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय और जीवन-मरण आदि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों का सुखपूर्वक सहन करना साधारणसी बात हो जाती है।

उदाहरणरूप में आप अपने प्राचीन योद्धाओं-पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, वीर हनुमान्, ब्रह्मचारी भीष्म आदि तथा आधुनिक महापुरुष महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल और कलयुगी भीम प्रो० रामूर्ति तथा ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी आदि व्यायामशील व्यक्तियों की जीवनियां पढ़कर देखें तो आपको पता चलेगा कि हमारे इन पुरुषाओं ने संसार में वे आश्चर्यजनक काम किए जिनको आज भी पढ़-पढ़कर पाठक रोमाञ्चित हो जाते हैं।

संसार के सभी महापुरुषों, विद्वानों, वैद्यों और डाक्टरों का यही एक मत है कि मनुष्य के शरीर को सुन्दर, सुदृढ़ बनाने और स्वस्थ रखने में व्यायाम से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। स्वास्थ्यप्राप्ति की सब औषधों से बढ़कर परमौषध व्यायाम ही है।

जो इस परमौषध का आश्रय छोड़कर वैद्य, डाक्टरों के पीछे फिरता है वह अपने धन, यौवन और स्वास्थ्य सबसे हाथ धो बैठता है।

महापुरुषों, प्रसिद्ध वैद्यों एवं डाक्टरों की सम्मतियां

पाठकों के लाभार्थ व्यायाम के पक्ष में कुछ महापुरुषों, वैद्य एवं डाक्टरों की सम्मतियां यहां दी जाती हैं।

महर्षि दयानन्द जो इस युग के आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित, आदर्श ब्रह्मचारी और आदर्श सुधारक थे और सदैव दण्ड, मुग्दर आदि का नित्य नियमित रूप से व्यायाम करके ही भोजन पाते थे, वे राजा की दिनचर्या के विषय में सत्यार्थप्रकाश में यों लिखते हैं—

"प्रातःकाल उठ, शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्र कर, नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा और कवायद करा, शस्त्र और अस्त्रों का कोष तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख नित्यप्रति व्यायामशाला में जा व्यायाम करके मध्याह्न समय भोजन के लिए अन्तःपुर अर्थात् पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे।" (सत्यार्थप्रकाश षष्ठ समुल्लास)

डाक्टर हालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं—

वीर्य वह अमूल्य रत्न है जो बल का भण्डार है। वह रक्त में पुनः मिल जाता है और शरीर में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यायामी पुरुष अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है।"

जर्मन का एक प्रोफेसर लिखता है—

"अच्छा हो वह युवक मर जाये जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियों को पुष्ट नहीं बनाता।"

जर्मन देश को उंठाने वाले हर हिलटर "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में लिखते हैं—

"अपनी शिक्षापद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर-अभ्यास को नहीं, व्यामाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर-निर्माण को देना होगा। क्योंकि सर्वमान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी लिखते हैं—

"व्यायाम स्वास्थ्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना वायु, जल और भोजन। व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है। भोजन के समान व्यायाम भी शरीर तथा मस्तिष्क के लिए आवश्यक है। इसके बिना मस्तिष्क भी वैसे ही निर्बल पड़ जाता है जैसे कि शरीर। निर्बल मस्तिष्क एक प्रकार का रोग है। पुष्ट मस्तिष्क का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है।

"एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा सकता है जब तक कि उसका मस्तिष्क भी उसके शरीर की भांति पुष्ट न हो।

"हम में से बहुत से व्यक्ति कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं, परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान नहीं देते। उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण निर्बल पड़ जाता है और वे अनेक रोगों के आखेट(शिकार)बन जाते हैं। यहीं तक ही नहीं,बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कार्यों की आशा करता है तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं।"

"हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है।"

"आदर्श व्यायाम वह है—जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों

को लाभ पहुँचता हो। केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है।"

डॉक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं—

"व्यायाम से सब अङ्गों में बल, स्फूर्ति आती है। सब अङ्गों में पूर्णता लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

मिस्टर सैण्डो विलायत का प्रसिद्ध पहलवान —

अपने बाल्यकाल में रोगी था, उसे कोई अच्छे से अच्छा डॉक्टर भी स्वस्थ नहीं कर सका। अन्त में उसने परमौषध व्यायाम का सहारा लिया। इसी की कृपा से उसकी पहलवानी का संसार में डंका बजा और वह अपने इस वचनानुसार—

"सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम द्वारा किया जा सकता है।" सभी रोगों की चिकित्सा अन्त तक व्यायाम के द्वारा ही करता रहा।

कलयुगी भीम राममूर्ति ने भी जो हाथी को अपनी छाती पर से उतारते थे, अपनी सारी शक्ति का स्रोत ब्रह्मचर्य और व्यायाम को ही बताया है। वह एक स्थान पर लिखते हैं कि "व्यायाम के बिना अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहना असम्भव है।"

यूनान का प्रसिद्ध वैद्य अफलातून लिखता है—

"मल को इकट्ठा होने से रोकने के लिए व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है।"

भारत के प्रसिद्ध वैद्य पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा 'अमृतधारा' लिखते हैं—

"आर्यों के भीतर जब व्यायाम की प्रथा थी तब यहीं बड़े बड़े योद्धा हो चुके हैं। भीम जैसे मनुष्यों का होना भी यहीं सम्भव था,

जो हाथी को उठाकर फेंक सकते थे ।"

वे दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

"व्यायाम से वहुत ही लाभ है। रुधिर बहुतसा तो हमारे अङ्गों के भीतर खर्च होता है और हमारे शरीर को दृढ़ करता है। जिसका वीर्य बनकर बाहर निकल जाता था वह शरीर के भीतर ही रहता है। और इससे बढ़कर यह भी लाभ है कि जो वीर्य वन जावे तो व्यायाम से पुनः शरीर के भीतर शोषण होकर शरीर और हड्डियों को दृढ़ करेगा। जिसका निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा, वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अतः व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए अपितु नित्य करना चाहिए।"

पाश्चात्य देश और हम

सभी पश्चिमी देशों में व्यायाय का खूब प्रचार है। वहां सर्वत्र व्यायाम शिक्षा का अङ्ग बन चुका है। वहां के सुधारक व्यायाम के महत्व को भलीभांति समझ चुके हैं। इसलिए वहाँ कोई कठिनाई नहीं। वहां की जनता व्यायाम को अपना अंग बना चुकी है। इसलिए वहां के लोगों के स्वस्थ्य हम से कहीं अच्छे हैं। क्या कारण है कि इस अभागे भारत में युवक भी व्यायाम नहीं करते और इस जीवनपयोगी वस्तु वीर्य को अपने जीवन का अङ्ग नहीं बनाते? इसका मुख्य कारण कुशिक्षा का प्रभाव अथवा शिक्षा का अभाव ही है। भारत में माता पिता बालक को उत्पन्न तो कर देते हैं किन्तु वे उसकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति का कुछ ध्यान नहीं रखते जो कि उनका मुख्य कर्तव्य कर्म है। यदि वे अपने सम्मुख बालकों को नित्य प्रति व्यायाम करायें तथा अपने बालकों को बाल्यकाल में ही व्यायाम करने का अभ्यासी बनादें, साथ ही

उन्हें व्यायाम का महत्व भी समझा दें तो वे बड़े होने पर व्यायाम कदापि नहीं छोड़ सकते। प्रथम तो बाल्यावस्था में व्यायाम का अभ्यास नहीं कराते, इसलिए युवावस्था में व्यायाम भार दिखाई देता है, बुढ़ापे की तो बात ही क्या कहनी? उस समय तो उठना बैठना भी भारी हो जाता है। यथार्थ में सारा दोष तो हमारी शिक्षा प्रणाली का ही है। इसमें व्यायाम के लिए कोई स्थान नहीं। हमारे स्कूलों की शिक्षा इतनी व्यर्थ, अरोचक, निकृष्ट और अधूरी है कि इससे किसी प्रकार का भी लाभ नहीं। व्यायाम के नाम पर स्कूल, कालिजों में वालीबाल फुटबाल आदि अंग्रेजी ढंग के खेल खिलाये जाते हैं। उनमें इनेगिने थोड़े ही विद्धार्थी भाग लेते हैं वा ले सकते हैं। इन खेलों से भी विशेष लाभ नहीं, इन में समय और धन का ही नाश होता है। खेल-खेल ही होता है और व्यायाम-व्यायाम ही। क्या हुआ कोई एक-आध विद्यार्थी कभी भूलकर व्यायाम कर लेता हो, नहीं तो प्रायः अधिक विद्यार्थी और शिक्षक ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि व्यायाम करना अनपढ़ मूर्ख और नीच लोगों का कार्य है। इसीलिए विद्यार्थी तथा शिक्षित समाज के स्वास्थ्य की अत्यन्त दुर्दशा है। अजीर्णता वा कोष्टबद्धता का रोग प्रायः सबको रहता है। इसके अतिरिक्त वे अन्य अनेक प्रकार के रोग यथा प्रतिश्याय (जुकाम), खांसी, हृदय की धड़कन, छाती में पीड़ा, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि से पीड़ित रहते हैं। सदैव इनके स्वास्थ्य में गड़बड़ ही रहती है। अपने विद्यार्थियों की दीन-हीन शारीरिक निर्बल अवस्था को देखकर रोना आता है। १६ और २० वर्ष की वृद्धि अवस्था में जिनके मुखमण्डल सदैव हीरे की भांति चमकने चाहियें थे, आज वे निस्तेज, बलहीन, मनमलिन; लुटे और मुंह पिटे से दिखाई देते हैं। पश्चिमी झूठी सभ्यता की लहर ने हमारे विद्यार्थी समाज को आलसी, शृङ्गार-

प्रिय, भोगी और रोगी बनाकर इनके स्वास्थ्य का सर्वथा सर्वनाश ही कर डाला है। क्योंकि आमाशय, पेट और फुफ्फुस (फेफड़े) के बिगड़ने से ही सब रोग होते हैं और इनके स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय व्यायाम है।

यदि ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी के समान, अन्य सुधारक भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रचार करें तो देश के शीघ्र ही सुदिन आसकते हैं। महाराष्ट्र वा दक्षिण में जाकर देखें, श्रद्धेय प्रोफेसर जी की कृपा से प्रायः सभी नगरों में व्यायामशाला बन गई हैं। शिक्षित लोगों का झुकाव भी व्यायाम की ओर होने लगा है। उन्हीं के पुरुषार्थ से आज बड़ौदा में ४-५ लाख रु० की व्यायाम-शाला और शस्त्रागार बना हुआ है। इसी प्रकार सारे देश में व्यायाम के प्रचार की आवश्यकता है। सुधार तो तब हो जब हमारी सरकार ऐसा राज्य नियम ही बना दे जिससे सब को अनिवार्य रूप से व्यायाम करना ही पड़े। व्यायाम न करनेवालों को सरकार दण्ड दे और उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखे।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में व्यायाम का समुचित प्रबन्ध हो। अन्य विषयों की भांति इसकी भी परीक्षा हो, इसमें उत्तीर्ण होने वाला ही उत्तीर्ण समझा जावे। देखें, पुनः व्यायाम का प्रचार तथा हमारे स्वास्थ्य का सुधार कैसे न हो। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम और देशके प्रत्येक कोने में व्यायामशालायें वा अखाड़े चलाये जावें। स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक और सम्मान दिये जावें। जो निर्बल और रोगी हों उन्हें विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करने की अनुमति न दी जावे। केवल स्वस्थ और बलिष्ठ युवा स्त्री-पुरुष ही विवाह और सन्तानोत्पत्ति के अधिकारी हैं। जिन की संतान अधिक सुन्दर, स्वस्थ और बलवान् हो, उनको अनेक प्रकार के पारितोषिक वा मासिक वृत्तियाँ देकर सरकार प्रोत्साहन दे।

निर्बल, रोगी सन्तान पैदा करनेवाले को यथोचित दण्ड दे। तब कहीं इस पतित भारत का भाग्योदय हो सकता है, पुनः खोई हुई प्राचीन गौरव-गरिमा को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से घृणा करके कभी भी कोई देश नहीं उठ सकता। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य तथा देश प्रेमी को प्रतिदिन व्यायाम करने का व्रत लेना चाहिए।

व्यायाम का लक्षण

अब तक हम व्यायाम शब्द का प्रयोग करते आरहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति इसका थोड़ा बहुत अर्थ जानता भी है, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ क्या है यह जानना आवश्यक है। क्योंकि एक वस्तु का वास्तविक लक्षण जानकर ही हम उससे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। चरक संहिता में इसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३०)

शरीर की जो चेष्टा बल बढ़ाने के लिए और स्थिरता (दृढ़ता) के लिए की जाती है, उस चेष्टा का नाम शारीरिक व्यायाम है। इस व्यायाम को मात्रापूर्वक नित्य प्रति सेवन करना चाहिए।
व्याख्या—शरीर को बलिष्ठ, कार्यक्षम, सुदृढ़, स्वस्थ, सुन्दर, स्थिर तथा चिरायु वाला बनाने के लिए जो भी शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों से प्रतिदिन नियमपूर्वक चेष्टायें, परिश्रम वा उपाय किये जाते हैं, उनको व्यायाम कहते हैं।

महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में लिखा है—

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात्समन्ततः॥
(चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३८)

ऐसा कर्म वा क्रिया जिससे शरीर का परिश्रम होता है अथवा शरीर की वृद्धि वा विकास के लिए क्रियाविशेष वा प्रयत्न किया जाता है उसे व्यायाम कहते हैं। व्यायाम करने के पीछे शरीर को सुख देना चाहिए अर्थात् विश्राम देना चाहिए और भलीभांति शरीर के सब अंगों को अथवा मांस-पेशियों का धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए। जिस से शरीर में जो श्रान्ति वा थकावट आती है वह दूर हो जावे और शरीर शीतल होकर अपनी पूर्व की अवस्था में आजावे। क्योंकि व्यायाम करने में मांस पेशियों (पुट्ठों) पर बल पड़ता है वे थककर टूट तक जाते हैं। मर्दन करने से उनकी थकावट दूर होकर पुनः ठीक हो जाते हैं।

आयामो विविधोऽङ्गाना व्यायाम इति कीर्तितः ॥ धनुर्वेद ॥

शरीर के विविध अङ्गों का आयाम अर्थात् फैलाव, विकास अथवा वृद्धि के लिए जो श्रम वा चेष्टा की जाती है उसे व्यायाम कहते हैं।

साधारण व्यायाम—करनेवाले लोग केवल इसी बात का ध्यान रखते हैं कि उनके भुजदंड और जङ्घायें तैय्यार हो जायें और वक्षःस्थल (छाती-सीना) निकल आये वा उभर आये और विशाल हो जाये। पुट्ठे तैय्यार करना वा डौले बनाना उनके व्यायाम का उद्देश्य होता है। इसलिए इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे दण्ड, बैठक आदि कठिन से कठिन व्यायाम करते हैं। उनकी इच्छा के अनुसार उनके पुट्ठे (Muscles) भी तैय्यार हो जाते हैं। उनका शरीर सुन्दर और दर्शनीय हो जाता है। किन्तु उनका स्वास्थ्य इतना व्यायाम करने पर भी अच्छा नहीं बनता। इसलिए व्यायाम तो वही ठीक है कि जिसके करने से शरीर सुन्दर, सुडौल, सुदृढ़ और बलवान् भी हो और साथ ही स्वास्थ्य भी ठीक रहे और मस्तिष्क भी ठीक काम करता हो। उसमें

आलस्य, तन्द्रा और तमोगुण की प्रधानता न हो। शरीर, मन आदि सदा उत्साह से भरे रहें।

व्यायाम मात्रानुसार ही करें

चरक शास्त्र में मात्रा के अनुसार व्यायाम करने पर बड़ा बल दिया है मात्रा से अधिक व्यायाम करने से अनेक हानियां हो जाती हैं। व्यायाम—अपनी शक्ति, बल के अनुसार तथा अपनी शारीरिक अवस्था को विचार कर करना चाहिए। व्यायाम उतना ही करना चाहिए जिससे शरीर अत्यधिक श्रान्त न होने पाये। अज्ञान के कारण वा सामूहिक स्पर्धा (हार-जीत) के रस्साकसी, दौड़, फुटबाल आदि खेलों में व्यायाम शक्ति से बाहर होने की संभावना सदैव रहती है। व्यक्तिगत विचारपूर्वक व्यायाम करने से व्यायाम के अधिक होने का भय नहीं रहता। कभी-कभी कोई व्यायाम की पुस्तक पढ़कर वा व्याख्यान सुनकर प्रथम ही दिन अधिक व्यायाम कर डालता है अथवा अपने से अत्यधिक बलवान् व्यक्ति से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करने से अथवा किसी साथी के साथ अधिक व्यायाम करने की स्पर्धा (शर्त) में व्यायाम का अति योग (अत्यधिकता) कर डालता है। जिससे कभी-कभी बड़ी भयंकर हानियां हो जाती हैं।

व्यायाम की मात्रा के विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

> सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुंभिरात्महितैषिभिः।
> बलस्यार्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा॥
>
> (चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४६)

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों को प्रतिदिन सभी ऋतुओं में अपने बल से आधा व्यायाम करना चाहिये। अन्यथा

अधिक व्यायाम किया हुआ हानि करता है। यहां तक कि मृत्यु की भी सम्भावना रहती है।

अत्यधिक व्यायाम से हानियां

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥

(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३२)

अति व्यायाम करने से शरीर बिना ही परिश्रम किये थका रहता है। उसमें पीड़ा होती है। मन और इन्द्रियों में ग्लानि सी रहती है। रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय अर्थात् नाश होकर मनुष्य निर्बल हो जाता है। यहां तक कि क्षय (तपेदिक) भी हो जाता है। तृष्णारोग (अधिक प्यास लगना), रक्तपित्त (नाक, मुख वा अन्य किसी अङ्ग से) रक्त का बाहर निकलना, प्रतामक-श्वास (दमा), कास (खांसी), ज्वर और वमन (उलटी) आदि रोग हो जाते हैं। "अतिव्यायामतो रोगा मानवानां भवन्ति हि।" (चरकसंहिता)।

अर्थात्–अति व्यायाम करनेवाले मनुष्य अनेक रोगों में फंस जाते हैं। जो लोग "अधिकस्याधिकं फलम्" के अनुसार यह समझ कर कि अधिक व्यायाम से अधिक बल बढ़ता है मात्रा से अधिक व्यायाम कर डालते हैं, वे बड़ी भयङ्कर भूल करते हैं और इसीलिए अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। बिना विचारे अन्धाधुन्ध व्यायाम का परिणाम सदैव हानिकारक ही होता है। अधिक व्यायाम से शरीर दुर्बल, रोगी, भद्दा और कुरूप हो जाता है। बुद्धि और स्मरणशक्ति घट जाती है। मस्तिष्क को बड़ी हानि पहुंचती है। अनियमित और मात्रा से अधिक अच्छी से अच्छी वस्तु का भी उपयोग हानिकारक ही होता है। इसलिए "अति सर्वत्र

वर्जयेत्" अति सर्वत्र वर्जित है। इस विषय में एक सच्ची घटना दी जाती है—

हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के समय में जब अखाड़ों में जाने और व्यायाम करने का प्रचार बढ़ा, तब अपने माता-पिता के उत्साहित करने पर एक युवक ने अखाड़े में जाना आरम्भ किया। थोड़े से दिनों में कई सौ दण्ड-बैठक निकालने लगा। थोड़ा-थोड़ा मल्ल युद्ध (कुश्ती) भी करने लगा। एक दिन अपने से द्विगुण शक्तिवाले युवक से मल्लयुद्ध किया। उसी दिन से उसकी छाती में साधारण सी पीड़ा होने लग गई। उसने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और पहले की भाँति अखाड़े में जाता रहा। पुष्टिकारक भोजन करने और नियमित व्यायाम करते रहने पर भी उसका शरीर निर्बल होने लगा। भोजन के पश्चात् दोपहर को शरीर उष्ण हो जाया करता और हाथ-पैरों के तलवे हर समय जलने लगे। खांसी भी हो गई। फिर भी अखाड़े में जाने का नियम नहीं छोड़ा। जब शरीर अत्यन्त निर्बल होगया और छाती की पीड़ा तथा खांसी बहुत तङ्ग करने लगी और ज्वर भी हर समय रहने लगा। पुनः वैद्य-डाक्टरों का द्वार खटखटाया। अनेक प्रकार की चिकित्सायें कीं, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मुख से हर समय रक्त निकलने लगा। ज्वर और छाती की पीड़ा के कारण न रात को नींद आती थी और न दिन में ही एक क्षण आराम से बीतता था। अन्त में यह होनहार युवक व्यायाम के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट सहकर विकराल काल का ग्रास हो गया। आशा है कि इस दुर्घटना से मात्रा से अधिक व्यायाम करने वाले लोग शिक्षा ग्रहण करेंगे।

इसलिए महर्षि पतञ्जलि जी ने चरक शास्त्र में लिखा है—

व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान्।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥
(सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३३)

व्यायाम, हास्य (हंसना), भाष्य (बोलना), मार्ग चलना, मैथुन तथा रात्रिजागरण का चाहे अभ्यास भी हो, बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि इनका अधिक मात्रा में सेवन न करे।

एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति ॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३४)

इन्हें तथा इस प्रकार से अन्य कार्यों का जो अतिमात्रा में सेवन करता है वह शीघ्र ही रोग एवं मृत्यु का ग्रास होता है। जैसे सिंह हाथी को मारकर पुनः उसे खींचकर दूसरी जगह ले जाना चाहता है अर्थात् मात्रा से अधिक उसे खींचने में शक्ति लगाता है, तो उसका परिणाम यही होता है कि वह मर जाता है।

व्यायाम की मात्रा

अपने बल वा शक्ति से आधा व्यायाम करना चाहिये। महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में बलार्ध के ये लक्षण लिखते हैं—

हृदिस्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धं विनिर्दिशेत् ॥
(चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

हृदय स्थान में ठहरा हुआ वायु जब व्यायाम करनेवाले मनुष्य के कण्ठ तक पहुंच जाये वा मुख में आने लगे अर्थात् फुफ्फुस (फेफड़े) के अन्तिम सिरे तक छोटे-छोटे कोष्ठकों में भी जब व्यायाम करते हुए श्वास-प्रश्वास होने लगे, उसे बलार्ध जानना चाहिये।

व्यायाम की अधिकता से बचने के लिए और उचित मात्रा जानने के लिए धन्वन्तरि जी ने बहुत उत्तम विधि बतलाई है।

वैसे तो एक मनुष्य दूसरे की अपेक्षा बहुत अधिक व्यायाम कर सकता है इसलिए सबका बलार्ध पृथक्-पृथक् है। अब भी सम्भव है कोई बलार्ध मात्रा को न समझ सके। अतः इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

व्यायाम करते समय मुख को बन्द रखना चाहिये और श्वास सदैव नासिका से ही लेना चाहिये। जब व्यायाम करते-करते श्वास चढ़ जायें और मुख खोलने के लिए विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिये कि पर्याप्त व्यायाम हो चुका। स्वस्थ की दशा में यह सर्वथा ठीक है, किन्तु नासा रोग या कफ रोग के कारण नासिका बन्द हो तो यह परीक्षा ठीक नहीं। तब दूसरी विधि का आश्रय लेना पड़ता है। महर्षि धन्वन्तरि जी ने दूसरी विधि भी लिखी है-

कक्षाललाटनासासु हस्तपादादिसन्धिषु ।
प्रस्वेदान्मुखशोषाच्च बलार्धं तद्विनिर्दिशेत् ॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४७)

जव कक्षा (बगल), मस्तक, नासिका तथा हाथ-पैर आदि की सन्धियों (जोड़) में स्वेद (पसीना) आने लगे और मुख सूखने लगे तो वलार्ध समझकर व्यायाम वन्द कर देना चाहिए।

बलार्ध का एक आशय यह भी है— कि जिस मनुष्य में १०० दण्ड निकालने की शक्ति है, वह ५० दण्ड निकाले। इसे बलार्ध समझना चाहिए।

अधिक व्यायाम से बचने के लिए एक बात का सदैव ध्यान रखें, व्यायाम करते समय आपका मुख न बिगड़ने पावे। अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करने से मुख की आकृति बिगड़ जाती है। इसलिए अपने बल से अधिक व्यायाम करने से बचने का यह एक अच्छा ढंग है।

उपर्युक्त बातों को पढ़कर कोई सज्जन उलटी शिक्षा ग्रहण न

करें और व्यायाम की मात्रा सर्वथा न घटा दे। जहां अधिक व्यायाम करने से हानि होती है वहाँ थोड़ा व्यायाम करने से कोई लाभ भी नहीं होता। जसे शहरों में लोग खेलने की क्लबें बनाते हैं, वहां जाकर बाबू लोग थोड़ी बहुत देर खेल आते हैं और इसी को व्यायाम समझते हैं। ऐसे व्यायामों से कोई लाभ नहीं होता। जिस प्रकार अधिक भोजन से हानि और रोग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बहुत थोड़े भोजन से भी मनुष्य निर्बल हो जाता है और उसका शरीर कदापि हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। जिस प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ भोजन शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है, इसी प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ व्यायाम भी हमारे शरीर को सुदृढ़, स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

प्रारम्भ में ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। आरम्भ में थोड़ा व्यायाम करें, पुनः शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें जैसे—कोई व्यक्ति पहले दिन १० दण्ड करता है तो उसे अगले दिन एक दण्ड बढ़ा देना चाहिए, अथवा सप्ताह में १ दण्ड बढ़ाने के नियम से वह वर्ष भर में ६० और दो वर्ष में ११० दण्ड प्रतिदिन करने का अभ्यास कर सकता है। इसी प्रकार अपने बलाबल को विचार कर तथा भोजन के अनुसार ही व्यायाम को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। बहुत बार व्यायाम के नये प्रेमी नवयुवक इस विषय में बड़ी शीघ्रता करते हैं। प्रथम तो पहिले ही दिन वे अपनी शक्ति से अधिक दण्ड आदि व्यायाम करते हैं। फिर उत्साह में ५-५ वा १०-१० दण्ड प्रतिदिन बढ़ाने का यत्न करते हैं। उनका यह खेल २-४ दिन तो चल जाता है, किन्तु पीछे उनका यह बढ़ाने का नियम जब टूट जाता है और मन भर जाता है, तो पहले जैसी रुचि और उत्साह नहीं रहता और पुनः वे व्यायाम को छोड़ बैठते हैं। इसलिये थोड़े व्यायाम से आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ाना हितकर

है। इस बात का सदा ध्यान रखें कि चाहे दण्ड, बैठक आदि कोई भी व्यायाम करें, किन्तु एक बार में इतना ही करें जितना सुख-पूर्वक आप कर सकते हैं। आपका श्वास नहीं फूलना चाहिये। श्वास फूलने या उखड़ने अथवा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी व्यायाम करते रहने से शरीर के साथ बड़ा अन्याय होता है और अनेक प्रकार की हानियां होती हैं, जिनको पहले बताया जा चुका है।

व्यायाम की मात्रा के विषय में विदेश के प्रसिद्ध पहलवान मिस्टर सैंडो लिखते हैं—

"व्यायाम से यदि बल प्राप्त करना चाहते हो तो व्यायाम थोड़ा बलानुसार करो; परन्तु नियमानुकूल करो। यह नहीं चाहिये कि एक दिन तो १०० दण्ड निकाल लिये और अगले दिन एक भी नहीं।"

शेख बू अली सीना का कथन है—

"यदि व्यायाम समतापूर्वक यथेच्छा और यथोचित समय पर किया जाये तो सर्वोपायों से लाभदायक हो सकता है, परन्तु जिस व्यायाम को समतापूर्वक न किया जाये वह दुर्बलता तथा शक्ति-हीनता का कारण होता है।"

इसी विषय में प्रोफेसर राममूर्ति जी का आदेश है—

"व्यायाम का अभ्यास क्रमशः करना चाहिए, एकदम बढ़ा देना उचित नहीं। जो व्यायाम किया जाये, धीरे-धीरे अंगों पर पूरा जोर देकर किया जाये।"

व्यायाम करने से पुट्ठों (मांस पेशियों) में पीड़ा उत्पन्न होती है। उन में पीड़ा के साथ-साथ एक प्रकार का तनाव वा अकड़ाव-सा होता है। बहुत से लोग उस पीड़ा आदि के कारण को न समझकर व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम से

उत्पन्न हुई पुट्ठों की पीड़ा पुट्ठों में नये बल प्राप्त करने की इच्छा या भूख को प्रकट करती है अतः इस पीड़ा से डरकर व्यायाम छोड़ देना भारी भूल है। एक-दो सप्ताह निरन्तर व्यायाम करते रहने से पीड़ा स्वयं शांत हो जाती है। यह व्यायाम से ही हुई है और व्यायाम से ही चली जाती है। अतः इसकी चिन्ता छोड़कर नित्य व्यायाम करते रहना चाहिये।

नियमित व्यायाम

जो व्यायाम नियमों को ध्यान में रखकर किया जाता है, उसे नियमित व्यायाम कहते हैं।

जो व्यायाम प्रति-दिन अपनी शक्ति, मात्रा, भोजन, आयु आदि को ध्यान में रखकर नियत समय और उचित स्थान पर श्रद्धापूर्वक किया जाता है उससे पूरा-पूरा लाभ होता है। कोई व्यक्ति यदि एक दिन व्यायाम करके दो दिन व्यायाम नहीं करता अथवा दो सप्ताह करके पुनः एक सप्ताह के लिए छोड़ देता है और एक दिन प्रातः ६ बजे, दूसरे दिन ५ बजे और तीसरे दिन ७ बजे करता है और किसी दिन अधिक और किसी दिन न्यून व्यायाम करता है उसे इस प्रकार व्यायाम करने से यथेष्ट लाभ नहीं होता, किन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

मिस्टर सैंडो पहलवान लिखते हैं—

"सड़क कूटनेवाले सारा दिन (सड़कें कूटते-कूटते। मानो व्यायाम ही करते रहते हैं। परन्तु वह एक दूसरे की अपेक्षा ऐसे हृष्ट-पुष्ट नहीं होते, जैसा कि होना चाहिये। कारण यह है कि उनका सड़क का कूटना इस अभिप्राय से नहीं होता, कि वह बल और स्वास्थ्य प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु वे तो उदर-पूर्ति के लिए यत्न कर रहे हैं। इस पर भी वे व्यायाम न करनेवालों से स्वस्थ

और बलवान् होते हैं। क्योंकि व्यायाम (परिश्रम) अपना गुण तो अवश्य करता है। यदि इसके साथ मन की शक्ति भी होती तो बस फिर क्या था।"

सड़क कूटनेवालों के समान लोहार भी दिन भर हथौड़ा चलाकर परिश्रम करता है, किन्तु उसके भुजदण्ड और पुट्ठे नियमित व्यायाम करनेवाले पहलवान के समान सुदृढ़ और पुष्ट नहीं होते और न ही उसका शरीर वैसा स्वस्थ और बलयुक्त होता है। आलसी मनुष्यों की अपेक्षा तो लोहार आदि का शरीर स्वस्थ और दृढ़ ही होता है। क्योंकि परिश्रम वा कार्य का फल तो उसे मिलता ही है। किन्तु व्यायाम करनेवाला पहलवान नियम से प्रतिदिन सायं-प्रातः कुछ काल ही व्यायाम करता है। यह नियमित व्यायाम उसके शरीर को सुडौल, सुन्दर, स्वस्थ बलयुक्त बना देता है। क्योंकि व्यायाम-व्यायाम ही है और कार्य-कार्य ही है। लोहार वा सड़क कूटनेवाले के कार्य को अनियमित व्यायाम कहा जा सकता है। क्योंकि वह बल और स्वास्थ्य वृद्धि के लिये नहीं किया जाता और न ही उसमें स्वास्थ्य के किसी नियम का ध्यान रखा जाता है।

व्यायाम और इच्छा शक्ति

व्यायाम से पूरा लाभ उठाने के लिए पूर्ण मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। व्यायाम करते समय अपनी इच्छा को पूर्णतया शरीर के अङ्गों की ओर लगाना चाहिये। जिस मांस-पेशी वा शरीर के अङ्ग को जितना दृढ़ और स्वस्थ करना चाहें, उस अङ्ग वा पेशी में व्यायाम करते समय उतनी ही इच्छा को प्रविष्ट कर दें वा लगायें। इच्छारहित व्यायाम जो भार समझकर किया जाता है, उससे कोई लाभ नहीं होता। व्यायाम के नाम से घबराना नहीं चाहिये, इसे मन लगाकर और आनन्द ले लेकर करना चाहिये।

प्रोफेसर राममूर्ति लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय मन को स्थिर रखना चाहिये और शरीर के प्रत्येक भाग पर व्यायाम के लाभ का चिन्तन करते रहें।"

सैण्डो पहलवान भी इस विषय में लिखते हैं—

"एक मनुष्य जो हृदय के साथ व्यायाम करता है, उसका थोड़ा बहुत व्यायाम भी उसको अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है, उस व्यक्ति की अपेक्षा जो व्यायाम तो बहुत करता है, किन्तु मन से नहीं करता। जिस अङ्ग का व्यायाम करें, मन भी साथ ही साथ यह अनुभव करे कि अमुक अङ्ग बल प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार व्यायाम करने से मन की दृढ़ता प्रबल भावना के कारण मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यंग बड़े शीघ्र ही सुन्दर, सुदृढ़ स्वस्थ और सुडौल बन जाते हैं। अतः व्यायाम करने के समय विशेषतया ब्रह्मचारी को एकाग्रचित्त होकर यह दृढ़ भावना रखनी चाहिये कि मेरी नस-नस और अङ्ग-प्रत्यंग में बल, तेज, वीर्य, वीरता, आरोग्य, स्वास्थ्य, सुन्दरता, स्थिरता और पराक्रम शक्ति आदि सब सद्गुण प्रवेश कर रहे हैं। मेरा शरीर उन्नत, हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हो रहा है। इस संकल्प का असाधारण प्रभाव पड़ता है, जिसको मनुष्य अनुभव से ही जान सकता है। जो लोग बहुत शीघ्रता और द्रुतगति से व्यायाम करते हैं और व्यायाम में मन की शक्ति का प्रयोग नहीं करते, वे बहुत थोड़ा लाभ उठाते हैं। अतः व्यर्थ का भार (बेगार) समझकर व्यायाम करना केवल मूर्खता ही है। इसलिये शनैः शनैः सावधानी से विधिपूर्वक मन लगाकर व्यायाम करना चाहिये। प्रोफेसर राममूर्ति तथा सैण्डो ने इसी कार्य के लिए बड़े शीशे का प्रयोग करना लिखा है। वे लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय सामने बड़ा शीशा रखकर उसमें शरीर के अङ्गों को ध्यानपूर्वक देखते हुए व्यायाम करने से शरीर

सुन्दर और सुडौल बन जाता है।"

व्यायाम का समय

प्रत्येक व्यक्ति को सन्ध्या के समान प्रातः और सायं दोनों ही समय व्यायाम करना चाहिये। ये दोनों ही समय अच्छे हैं, अपेक्षाकृत प्रातःकाल का समय अधिक अच्छा है और ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अच्छी लगन के ब्रह्मचारी रात को सोने के समय भी कठोर थकाने वाला व्यायाम करके सोते हैं। इससे स्वप्नरहित गाढ़ निद्रा आती है और स्वप्नदोष आदि के द्वारा वीर्य नाश नहीं होता। सायंकाल वा सोते समय जब भी व्यायाम करें, यह अवश्य ध्यान रक्खें कि खाया हुआ भोजन पच चुका हो और पेट हल्का हो अर्थात् मल-मूत्र त्याग के पश्चात् ही व्यायाम करना चाहिये। ग्रीष्म-काल में तो प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही निबट जाना चाहिये। गर्मी की ऋतु में सूर्योदय के पश्चात् तथा सायंकाल कठोर और बहुत अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। प्रातःकाल तो सदैव स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करनेवाला हल्का व्यायाम दौड़, आसन आदि करना चाहिये। क्योंकि प्रातःकाल बहुत अधिक और कठोर व्यायाम करने से श्रम (थकावट) के कारण आलस्य, तन्द्रा वा निद्रा तंग करती वा सताती है, जिससे दिन के कार्यों में बाधा पड़ती है। व्यायाम सदैव स्नान से पूर्व करना ही अच्छा रहता है, किन्तु व्यायाम के पीछे कुछ देर, ठहरकर शरीर को ठण्डा करके स्नान करना चाहिये। व्यायाम करने से जब शरीर उष्ण हो और स्वेद (पसीना) आया हुआ हो तो उसी समय स्नान करने से हानि होने की सम्भावना है। किसी विशेष अवस्था वा शीतकाल में स्नान के पीछे भी व्यायाम किया जा सकता है। यदि स्नान के पीछे व्यायाम करना हो तो सन्ध्या से निबटकर ही करना चाहिये। वैसे स्नान के पश्चात् व्यायाम करने से आलस्य रहता है और व्यायाम

के पश्चात् स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति, स्वच्छता और सुन्दरता आती है तथा व्यायाम का श्रम (थकावट) भी दूर हो जाता है और जो व्यायाम के द्वारा शरीर के रोमकूपों से दूषित मल निकला करता है, वह स्नान के से धुलकर शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इसलिए स्नान से पूर्व ही व्यायाम करना हितकर है। शीत-काल वा वसन्त ऋतु में साधारण लोगों के लिए भी और अच्छा पुष्टिकारक भोजन करने वालों के लिए सदैव ही व्यायाम लाभ-दायक है।

महर्षि धन्वतरि महाराज लिखते हैं—

व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ।
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा अ० २४ श्लोक ४५)

जो मनुष्य बलवान् हैं और जिनको घी, दूध, बादाम आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में खाने को मिलते हैं, ऐसे लोगों के लिए तो व्यायाम सदैव ही लाभदायक है। उनके लिए सदा आनन्द ही आनन्द है। किन्तु वसन्त और शीत-ऋतु व्यायाम करने के विशेष ऋतु हैं। इन ऋतुओं में व्यायाम करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है।

ऋषियों की इस आज्ञा के अनुसार व्यायाम के पश्चात् स्निग्ध बलवर्द्धक पदार्थ अवश्य खाने चाहियें। जिन लोगों को व्यायाम के पश्चात् पुष्टिकारक भोजन खाने को नहीं मिलता, उन्हें अधिक व्यायाम न करके थोड़ा व्यायाम करना चाहिये; नहीं तो शरीर क्षीण होने लगता है। आसनों के व्यायाम में पौष्टिक भोजन के खाने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी दूसरे ढंग के कठोर व्यायामों में है। ऐसे लोगों को अखाड़े में जाकर व्यर्थ में सूखी हड्डियां नहीं रगड़वानी चाहियें।

मल्लयुद्ध, मुलतानी दाव

व्यायाम करनेवाले का भोजन

गोदुग्ध अथवा उससे बने दही आदि पदार्थ, बादाम इत्यादि वा कोई अन्य सात्विक पदार्थ प्रातःकाल व्यायाम के पश्चात् खा लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम के पीछे भूख लगा करती है। खाली पेट रहना अच्छा नहीं। भूखा रहने से हानि होती है।

ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—"विद्यार्थी प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें और सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। स्नान से निवृत्त हो यथा विश्वास परमात्मा का ध्यान करें। उपासना के पश्चात् थोड़ासा

जलपान (प्रातराश) करें। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है, कि गेहूं का दलिया रंधवाकर यथारुचि मीठा या नमक डालकर (वा वैसे ही) खावें। फिर अध्ययन करें।"

किन्तु यह ध्यान रखें कि व्यायाम की उष्णता दूर हो जाने पर जब शरीर सर्वथा शीतल (ठण्डा) हो जाये, तभी कुछ थोड़ासा खाना चाहिये। अधिक पेट भरकर खाना भी उस समय अच्छा नहीं। व्यायाम के पश्चात् तत्काल खाना भी बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिए कुछ ठहरकर खाना चाहिये। व्यायामी मनुष्य का भोजन सदैव नियत समय पर सात्विक, सरल (सादा), पौष्टिक; शीघ्र पचनेवाला (हलका) और अल्पमात्रा में होना चाहिये। यह समझकर कि मेरी जठराग्नि व्यायाम के कारण तीव्र और प्रदीप्त है, मैं अधिक भोजन पचा सकता हूं, व्यायामी मनुष्य को अधिक भोजन नहीं ठूंस लेना चाहिये और मांसादि अभक्ष्य, गांजा भांग शराब आदि मादक द्रव्य, मिर्च खटाई आदि चटपटे हानि-कारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। कुछ लोग तो घृत दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाकर ही व्यायाम करने लग जाते हैं। कुछ लोग साथ-साथ खाते भी जाते हैं और व्यायाम भी करते जाते हैं। ऐसे लोगों का यही विचार है कि खा-पीकर अथवा खाते-खाते व्यायाम करने से खाया-पीया सब पच जाता है और शक्ति बढ़ती है। यह उनकी बड़ी भयंकर भूल है। इस प्रकार करने से बड़ी हानि होती है। ऐसे लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित और महामूढ़ होते हैं। ब्रह्मचारी अथवा किसी भी स्वास्थ्य-प्रेमी को ऐसे मूर्खों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करके उसी समय बैठना, लेटना, सो जाना वा खड़े रहना हानिकारक है। जब तक शरीर और श्वास अपनी पहली स्वाभाविक अवस्था में न आजायें और शरीर की उष्णता

न्यून न हो जाये, तब तक शरीर के अवयवों पर हाथ फेरते हुए शनैः-शनैः मन्दगति से टहलते रहना चाहिये और जो व्यायाम से आये हुए स्वेद हों उन्हें तत्काल पोंछ डालना चाहिये। जब तक पसीने सूख न जायें और शरीर ठण्डा न हो, तब तक वेग से चलने वाले वायु से भी शरीर को बचाना चाहिये। व्यायाम करके तत्काल ही लघुशङ्का (मूत्र-त्याग) करना लाभदायक और आवश्यक है। इससे शरीर की व्यर्थ की उष्णता निकल जाती है, मूत्राशय के रोग नहीं होते, शरीर और मन दोनों शान्त होते हैं।

आरम्भ आरम्भ में व्यायाम के पश्चात् प्यास लगा करती है। जो व्यायाम से होनेवाले लाभ को प्रकट करती है। कोई-कोई मूर्ख इस प्यास को बुझाने के लिए तत्काल हो जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ पी लेते हैं, जो अत्यन्त हानिकारक हैं। क्योंकि व्यायाम से जो लाभ होता है, ऐसे लोग जल पीकर उसे समाप्त कर देते हैं। व्यायाम के पश्चात् जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ नहीं पीना चाहिये। यदि पीना ही हो और प्रभु किसी को दें, तो गाय का धारोष्ण दूध अथवा बादाम आदि रगड़ कर पीने चाहियें। किन्तु ये भी शरीर के शीतल होने पर ही पीने चाहियें। इनके पीने से जहां प्यास और भूख दोनों शान्त होती हैं, वहां शरीर को बल और शक्ति भी मिलती है।

भोजन करने के पश्चात् न्यून से न्यून ४ घण्टा पीछे व्यायाम करना चाहिये और व्यायाम करने से १ घण्टा पीछे भोजन करना चाहिये।

किन-किन को व्यायाम न करना चाहिये ?

चरक शास्त्र में लिखा है—

क्रोधशोकभयायासैः क्लान्ता ये चापि मानवाः ।
ते वर्जयेयुर्व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्च ये ॥
(सूत्रस्थान अ० ७)

अर्थ-ज्वर आदि रोगों में, क्रोध में, शोक में, भय की अवस्था में और बहुत भूख और प्यास लगने पर व्यायाम नहीं करना चाहिये ।

इसी प्रकार जिस समय पेट बहुत भरा हुआ अथवा बहुत क्षुधा (भूख) हो, उस समय भी व्यायाम करना वर्जित है ।

व्यायाम समय के वस्त्र

व्यायाम के समय का सबसे अच्छा वस्त्र (पोशाक) लङ्गोट ही है । वैसे तो व्यायाम करते समय लोग लङ्गोट के अतिरिक्त रूमाली, कच्छ, जांघिया, बनियान, धोती, पाजामा, पैंट तथा और भी अन्य अंग्रेजी ढंग के वस्त्र पहनते हैं । किन्तु बनियान, धोती, पाज़ामा, पतलून, आदि पहनकर व्यायाम करना तो व्यायाम के साथ हास्य ही करना है । यदि ऐसे लोग रजाई ओढ़कर विस्तर पर ही पड़े रहें तो व्यायाम की दुर्गति न हो । व्यायाम करने के समय शरीर खुला हुआ होना चाहिये और व्यायाम का वस्त्र शरीर में बंधा हुआ और सटा हुआ अर्थात् चुस्त भी हो, किन्तु अधिक खिचा हुआ अर्थात् रक्त में किसी प्रकार की बाधा डालने वाला न हो । जैसे—पहलवानी जांघिया मल्लयुद्ध (कुश्ती) के लिए तो अच्छा रहता है, किन्तु इसे पहनकर व्यायाम करने में कठिनाई और कष्ट होता है । इसी प्रकार ढीले-ढाले कच्छे वा निकर भी व्यायाम के लिए उपयुक्त नहीं । इनके पहनने से व्यायाम के समय उचित स्फूर्ति और उत्साह नहीं होता । लङ्गोट को भी बहुत खींच कर नहीं बांधना चाहिये । लङ्गोट को कटि (कमर) में कसकर बांधने से बहुत हानि होती है । क्योंकि व्यायाम करते समय सारे

शरीर में शिर से पग तक रक्त शीघ्रतापूर्वक दौड़ने लगता है। यदि उस समय कटि में लंगोट बहुत कसकर बंधा हुआ है तो वह रक्त की तीव्र गति को रोक देता है और रक्त की गति में बाधा पड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ता और आयु भी घटती है। लंगोट वा कोई अन्य वस्त्र जो बहुत कसकर बाँधा जाता है, व्यायाम के समय हानि करता है। इसलिए लंगोट न बहुत ही ढीला और न ही बहुत खींच वा कसकर बांधना चाहिए और व्यायाम के पश्चात् लंगोट को तत्काल नहीं खोल देना चाहिए। ब्रह्मचारी को तो लंगोट वा कौपीन के विना क्षणभर भी नहीं रहना चाहिए। एक विशेष बात यह है कि प्रायः भारत में व्यायाम करनेवालों के वस्त्र बहुत ही मलिन (गन्दे) रहा करते हैं। उनके वस्त्रों में से दुर्गन्ध आने लगती हैं, जो अत्यन्त ही हानिकारक है। इससे अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए वस्त्रों को शीघ्र-शीघ्र साबुन आदि से धो डालना चाहिए और सदैव शुद्ध ही रखना चाहिए।

व्यायाम का स्थान

व्यायाम करने का स्थान स्वच्छ, पवित्र, स्वास्थ्यप्रद और खुला हुआ हो। वायु बिना रोक-टोक के भली-भांति आता जाता हो। वहां का वायु ताजा और शीतल हो, उस स्थान पर अथवा इधर-उधर कहीं निकट गलने सड़ने वाली वस्तुयें न हों, किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आती हो, वहां की शुद्धि (सफाई) भी भली-भांति रखनी चाहिए। दुर्गन्धयुक्त स्थानों में कभी भूलकर भी व्यायाम नहीं करना चाहिए। ग्राम वा नगर से बाहर जंगलों, क्षेत्रों और उद्यान वाटिकाओं (बाग-बगीचे) का वायु और स्थान अधिक स्वच्छ और पवित्र होता है। किसी बड़ी नदी, जलाशय और तडाग का तट भी अधिक स्वास्थ्यप्रद होने से व्यायाम के लिए

उपयुक्त है। ऐसे ही स्थानों को व्यायाम करने के लिए चुनें तो अधिक लाभ होगा। जो व्यायामशाला वा अखाड़े वाटिका वा फुलवाड़ी में होते हैं, वे बहुत ही अच्छे होते हैं। बात तो तब है, जब विचारशील धनी-मानी लोग वा सार्वजनिक सभायें (सोसाइटियां), पञ्चायतें अथवा हमारी राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक ग्राम वा नगर के साथ बस्ती से कुछ दूर ऐसी व्यायामशालायें वा साधना मन्दिर बनायें, जिनमें सुगन्धित फूलों के पौधे लगे हुए हों। बहुत सुन्दर-सुगन्धित फूलों की फुलवाड़ी व्यायामशाला के चहुँ ओर लगी हुई हो। व्यायामशाला के ऊपर लतायें चढ़ी हुई हों और वहां प्रतिदिन नियम से सुगन्धित सामग्री से अग्निहोत्र (हवन) होता हो। व्यायामशाला के अन्दर हनुमान्, भीष्म, भीम, अर्जुन, शंकर और दयानन्द आदि वीर योद्धाओं और आदर्श ब्रह्मचारियों के चित्र भी लगे हुए हों तो ऐसे स्थान पर प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा वा रुचि व्यायाम करने की होती है।

वैसे व्यायाम एक प्रकार की तपस्या वा साधना है और किसी प्रकार की साधना वा तपस्या एकान्त में ही अच्छी होती है। इस लिए व्यायाम करने का स्थान नगर वा बस्ती से पृथक् ही होना चाहिये। जहां तक सम्भव हो, व्यायामशाला वा व्यायाम का स्थान खुला, सुरक्षित, रमणीय और एकान्त में हो। उसमें पानी का यथेष्ट प्रबन्ध हो। एक व्यक्ति के लिए व्यायाम के सब साधनों का जुटाना भी असम्भव है। व्यायामशाला में मुगदर, मोगरी, लाठी, तलवार आदि व्यायाम के साधन सुगमता से रखे जा सकते हैं। मनुष्य पर वायुमण्डल का प्रभाव भी बड़ा भारी पड़ता है। व्यायामशाला में जहां सभी व्यायाम करते हों, यदि वहां कोई व्यायाम न करने वाला पहुँच जाए, तो अन्य सबको व्यायाम करता देखकर उसकी भी इच्छा वा रुचि व्यायाम करने की होती है। परस्पर एक दूसरे

को देखकर व्यायाम करने का उत्साह बढ़ता है। प्रतिकूल विचारों वा परिस्थितियों के कारण आई हुई शिथिलता से किसी साथी का व्यायाम करने का नियम वा व्रत नहीं टूटता और व्यायाम करने की उत्सुकता सदैव बनी रहती है। व्यायामशाला के और भी अनेक लाभ हैं।

देश के सुदिन भी उसी दिन आयेंगे, जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में सर्वत्र व्यायामशालाएं बन जायेंगी और व्यायाम को शिक्षा का अंग बना दिया जायेगा। जहां व्यायामशाला आदि की सुविधा न हो, वहां अपनी सुविधा अनुसार बस्ती के बाहर एकान्त, शुद्ध वायुवाला स्थान व्यायाम के लिए चुन लेना चाहिए। कितने ही लोग अपने घरों वा दुकानों में, चौपाल के किसी भाग में वा ऐसे ही ग्राम के अन्दर अन्य स्थानों पर व्यायाम करने लगते हैं जहां का वायु स्वच्छ नहीं होता। आने जानेवाले लाग भी देखते हैं, व्यर्थ की भीड़ हो जाती है और जहां पर अधिक मनुष्य रहते हों वहां का वायु दूषित हो जाता है। प्रायः कुश्ती लड़नेवाले पहलवान भी अखाड़े नगर वा बस्ती के अन्दर रखते हैं यह उनकी भारी भूल है और इसी कारण वे अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। ब्रह्मचारी को तो इस विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। वह सदैव ऐसे ही स्थान पर व्यायाम करे, जो शुद्ध, पवित्र और खुला हुआ हो और जहां का वायु शुद्ध और शीतल हो।

व्यायाम के प्रकार वा भेद

आजकल दो प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं। एक भारतीय, जिन्हें देशी व्यायाम कहना चाहिए। जिनमें दण्ड, बैठक, सपाट, मुगदर, गदा, मोगरी, लाठी, पट्टा, बनैटी, तलवार, मल्ल-युद्ध (कुस्ती), मल्लखम्भ का व्यायाम, तैरना, दौड़ना, कूदना, कबड्डी आदि खेल

तथा आसनों के सर्वश्रेष्ठ व्यायाम सम्मिलित हैं। इसी प्रकार और भी अनेक व्यायाम व्यक्तिगत और सांघिक प्रचलित हैं। दूसरे पाश्चात्य ढंग के विदेशी व्यायाम वा खेल फुटबाल, बालीबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस, बैडमिन्टन, सिंगलबार, डबलबार, मुक्काबाजी (Boxing) और प्रोफेसर सैंडो के विशेष व्यायाम डम्बल और भार उठाना (Weight lifting) इत्यादि अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं।

कौनसा व्यायाम करें ?

व्यायाम करनेवालों के सम्मुख एक समस्या खड़ी हो जाती है, कि वे अपने लिए कौनसा व्यायाम चुनें। महर्षि धनवन्तरि जी इसका उत्तर देते हैं—

वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च।
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा. अ. २४ श्लोक ४८)

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी आयु, बल वा शक्ति शरीर, प्रकृति, देश वा स्थान, काल वा ऋतु और भोजन के अनुसार भलीभांति विचारकर उचित व्यायाम करे। जो उपरोक्त बातों को बिना विचारे व्यायाम करता है, वह अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाता है।

क्योंकि व्यायाम का उद्देश्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल, बलवान्, पवित्र और शक्तिशाली बनाना है। अतः जिस व्यायाम से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हो, यथार्थ में उसी को व्यायाम कह सकते हैं और ऐसे सर्वगुणसम्पन्न व्यायाम हमारे प्राचीन पुरुषाओं ने बहुत लम्बे अनुभव के पश्चात् प्रचलित किए

हुए भारतीय देशी ढंग के व्यायाम ही हैं, जो हमें परम्परागत प्राप्त हैं।

महर्षि धन्वन्तरि जी ने आयु, अवस्था आदि को विचारकर व्यायाम करने का आदेश दिया है। इसलिए सर्वप्रथम अपने शरीर की परीक्षा करके यह देखना चाहिए, कि मेरा कौनसा अंग निर्बल है। जैसे—किसी का आमाशय (पेट) खराब है। भोजन ठीक नहीं पचता और पाचनशक्ति बिगड़ी हुई है, तो उसे अन्य अंगों के व्यायाम के साथ पेट के व्यायाम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार नियमित व्यायाम करने से उसका पेट बिना किसी औषध के ठीक हो जाएगा। जो व्यायामशील होकर भी वैद्यों और डाक्टरों के पास जाता है, उसका व्यायाम करना व्यर्थ ही है। क्यों कि व्यायाम करनेवाले को रोग नहीं हो सकते। यदि किसी भूल से हो भी जाए, तो व्यायाम के द्वारा ही उसे भगा देना चाहिए। प्रत्येक अङ्ग को सुदृढ़ और निरोग बनानेवाले प्राचीन तथा भारतीय ढंग के व्यायाम आसन आदि ही हैं। आज इनका महत्त्व योरुप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी भलीभांति समझने लगे हैं। इसलिए इनका प्रचार अमरीका आदि देशों में खूब बढ़ रहा है।

कलयुगी भीम प्रो० राममूर्ति इस विषय में अपना अनुभव लिखते हैं—

"पांच वर्ष की आयु में मुझे दमा के लक्षण दिखाई दियें। पिता जी की आज्ञा से मैंने व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। जिसके कारण मेरा रोग दूर हो गया। मेरे सम्मुख भीमसेन, हनुमान् जैसे वीरों की मूर्तियां और चित्र सदैव रहा करते थे। मैं निरन्तर यही सोचा करता था, कि इनके समान नहीं हो सकता,

तो अपने शरीर को बलवान् तो अवश्य बना सकता हूं। दस वर्ष की आयु में स्थानीय कालिजियेट स्कूल के अखाड़े में भर्ती होगया। उन्हीं दिनों पहलवानों की कुश्ती की खबर सुनकर मेरे मन में भी उत्साह उत्पन्न होगया। मैं पहलवान बनने की इच्छा से व्यायाम करने लगा। ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गई, त्यों-त्यों व्यायामों का अपना अभ्यास बढ़ाता गया। मैंने बड़े उत्साह से सैंडो का डम्बल घुमाना शुरु किया। परन्तु दो वर्ष के बाद ही उसे हताश होकर छोड़ दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि उससे मुझे विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ। प्रारम्भ की आयु में मैंने हारीजेंटलवार पैरेललवार, रिंग आदि विदेशी ढंग की कसरतें कीं। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें भी छोड़ दिया और देशी व्यायाम करने लगा। जितने देशीय प्रसिद्ध पहलवान मिलते गये, उन सबसे मैंने शारीरिक शक्ति बढ़ाने की भारतीय प्रथा और उपाय पूछे। परन्तु कोई सन्तोषप्रद विधि न बता सका। इस समय तक मैंने इन्ट्रैन्स क्लास तक अंग्रेजी और थोड़ी संस्कृत पढ़ली थी। संस्कृत के पठन-पाठन में मुझे विशेष आनन्द आया। शारीरिक उन्नति के साथ-साथ अपने आर्य धर्म के शास्त्र मूल संस्कृत भाषा में पढ़े। गीता के साथ-साथ सुश्रुत आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थ भी देखे। अपने शास्त्र के अध्ययन में मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय सुझाई पड़ा। अतः समस्त विदेशी ढंग छोड़कर यही ग्रहण किया और घोषणा करदी, कि भीम, द्रोण, हनुमान्, अर्जुन आदि पूर्वजों के गौरव को बढ़ाने वाली यही सर्वश्रेष्ठ व्यायाम की प्रणाली है। इस देशी व्यायाम में सामान और औजार आवश्यक नहीं। धन का कुछ व्यय नहीं। वह अभ्यास ही सब कुछ है, जिससे शरीर के पुट्ठे दृढ़ होते हैं। पुट्ठों की दृढ़ता के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। मैं प्रतिदिन ३ बजे से ६ बजे तक प्राणायाम करता था और १२ मील बिना

विश्राम पैदल चलता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक घण्टा जल में तैरता था।"

वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"आरम्भ-आरम्भ में व्यायाम करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत वार मैं आधा व्यायाम करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना दूभर ज्ञात पड़ता। किन्तु तुरन्त ही मेरे मन के देवता जाग पड़ते। अपने आदर्श को सिद्ध करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि ऐसा न कर सकूं तो मृत्यु अच्छी। अन्त में दुर्बलताओं पर मुझे विजय मिली। धीरे-धीरे व्यायाम बढ़ने लगा, उस समय मेरे व्यायाम का ऐसा क्रम था—भोर ही उठकर घर से ३ कोस तक दौड़ता। एक फौजी खड़ा था, वहां जाकर खूब कुश्ती लड़ता। लड़कर फिर ३ कोस दौड़ता हुआ घर आता। यहाँ अपने चेलों के साथ कुश्ती लड़ता। उस समय अखाड़े में डेढ़ सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के पश्चात् विश्राम कर, मैं तैरने चला जाता—। फिर सांझ को १५ सौ से लेकर ३ हजार तक दण्ड और ५००० से लेकर १०००० तक बैठक कर लेता, यही मेरा दैनिक व्यायाम था। इस का फल यह हुआ कि १६ वर्ष की आयु में मुझ में इतनी शक्ति हो गई, कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्का मारता, तो २-३ नारियल टूटकर भद-भद गिर पड़ते। इसी व्यायाम के कारण आज मेरी छाती ४५ इञ्च चौड़ी है और फैलाने पर ५७ इञ्च हो जाती है। शरीर की लम्बाई ५ फुट साढ़े छः इञ्च और तोल अढ़ाई मन है।"

राममूर्ति के बल के विषय में उस समय का एक लेखक लिखता है:—

"आज भारत के घर-घर में राममूर्ति का नाम फैला है। वह कलयुगी भीम है। हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते हैं। २५

घोड़ों की शक्ति की दो-दो मोटरें रोक लेते हैं। छाती पर बड़ीसी चट्टान रखकर उस पर पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करवा देते हैं। आधी इञ्च मोटी लोहे की जंजीर कमल की डण्डी के समान सहज में ही तोड़ देते हैं। ५० मनुष्यों से लदी हुई गाड़ी को देह पर से उतरवा देते हैं। यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई हवा गाड़ी उनके शरीर पर से पार हो जाती है। यह अलौकिक बल है, दैवी शक्ति है, सुनकर आश्चर्य होता है, देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। किन्तु यह सब बातें देखने में असाध्य प्रतीत होने पर भी असम्भव नहीं हैं। यदि प्रयत्न करे तो प्रत्येक मनुष्य राममूर्ति के समान हो सकता है। प्रयत्न भी हो और सच्ची लग्न भी हो।"

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि राममूर्ति बाल्यकाल में श्वास रोग के रोगी थे। वे अपनी देह की निर्बलता पर बड़े दुःखी रहते थे। भीम, लक्ष्मण, हनुमान् आदि वीर योद्धाओं की कथा सुनकर उनके मन में सच्ची लग्न उत्पन्न हुई। उन्होंने व्यायाम को अपने जीवन का अङ्ग बनाया। वे ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती थे शारीरिक और मानसिक पवित्रता को ब्रह्मचर्य की नींव समझते थे। ब्रह्मचर्य की धुन में ही उन्होंने ४४-४५ वर्ष की आयु तक विवाह नहीं किया। भारत के बालकों और युवकों के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का क्रियात्मक प्रचार किया। उनका स्वभाव बड़ा हंसमुख था। वे हंसी को स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी समझते थे।

वे सदैव कहा करते थे —

"मन से, वचन से और तन से पवित्र रहो। सादा भोजन करो। जीवन सरल रखो। प्रतिदिन व्यायाम करो। यही संसार में सुखी रहने का मूलमन्त्र है।"

वे नवयुवकों को सदैव इस प्रकार उत्साहित किया करते थे— "निष्फलता ! निष्फलता !! निष्फलता !!! क्या है ? हमने नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पांच बार, दस बार प्रयत्न करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। "Do or die" 'करो या मरो' 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' 'करूंगा या मरूंगा' यही हमारा मूल-मन्त्र है।"

वे भारत माता के होनहार बालकों की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिए व्याकुल होकर कहा करते थे—

'भारत के बालकों और युवकों का उद्धार—यही मेरे जीवन का मूल सूत्र है। वे चाहे कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म, या हनुमान् के समान हों या न हों, किन्तु देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यह मेरी मनोकामना है। देश के कोने-कोने में घूमकर मैंने युवकों को प्रोत्साहन दिया है। मन, वचन, तन और धन से भारत के नवयुवकों का मैं सेवक बना हूं। एक दिन मैं संसार से उठ जाऊँगा, किन्तु उसके पहले मैं यह आश्वासन चाहता हूं कि मेरी सेवा भारत माता के चरणों में स्वीकृत हुई है।"

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूलने वाले ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी लिखते हैं—

"सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहां जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड तथा बैठक करें। प्रोफेसर जी की रीति विद्यार्थियों (ब्रह्मचारियों) के लिए बड़ी लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अतिरिक्त शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने रहने के स्थान में वीरों, महात्माओं के चित्र रखने चाहियें।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति से प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करते थे। इससे उनको कितना आश्चर्यजनक लाभ हुआ, इस विषय में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

व्यायाम आदि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी के विषय में एक स्थान पर लिखा है–

"उनमें असाधारण शारीरिक बल था। तैरने आदि में वे पूरे पण्डित थे। थकान किसे कहते हैं, वह जानते ही न थे। ६०-६१ मील निरन्तर चलकर वह आगे चलने का साहस रखते थे। व्यायाम और प्राणायाम वह इतना करते थे कि देखनेवाले आश्चर्यान्वित होते थे।"

व्यायाम और प्राणायाम

वास्तव में प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति कोई अपनी निज की पद्धति नहीं, वह तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही पद्धति है। प्रोफेसर राममूर्ति ने मुख्यतया व्यायाम के लिए जिस नियम का आश्रय लिया वह प्राणायाम है। वे स्वयं इस विषय में लिखते हैं—

"व्यायाम प्राणायाम के साथ करो अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक, कुम्भ और रेचक करते हुए करो।"

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अङ्ग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का प्राण है और इसका हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बंन्ध है; यह समझ लेना आवश्यक है। इस लिये थोड़ा खोलकर लिखा जाता।

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांसपेशियों में पीड़ा हो जाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी वा किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इस से उसकी रानें और पिडलियां अकड़ जाती हैं और भरी भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहनेवाले पुट्ठों के छोटे छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूट कर शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ हो जाते हैं और टूटते ही नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) को जीवनशक्ति (ऑक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थ के भागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है। यही कारण है कि व्यायाम करने के समय श्वास चढ़ जाता है और श्वास प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु चाहिए और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ जाते हैं और प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के

साथ मिलकर शरीर के कोने कोने में व्याप्त हो जाता है, तो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकालता है। इसलिए व्यायाम करने से हमें पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओसजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ जाती है। यदि प्राण और अपान को टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को कम न कर दिया जाये तो ज्वर हो जाये। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढी हुई उष्णता को हमारा प्राण-वायु श्वास-प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्य भाग पर जो जल आजाता है, वह उष्णवायु के साथ छूकर वाष्प (भाप) बन जाता है। वाष्प बनने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से ले लेता है। इसी प्रकार जब व्यायाम आदि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल (विष) जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥

(अथर्व० कां० २; सू० ४. मं० ४)

निर्बल करनेवाले शोषक रोगों को और सब राक्षसों अर्थात् सब रोग-कृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

पाठक ! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को दूर करने के लिए प्राणवायु की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इसलिए हमें अपने शरीर के अन्दर अधिक से अधिक प्राणवायु को प्रविष्ट करना चाहिए। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा होने से उसकी धार वा गति का वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार हमें भी व्यायम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्रायः लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ासा श्वास थोड़े से फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का स्वभाव अभ्यास से ही होता है अनेक रोगों, पैतृक दोषों और लेटने बैठने की विधि न जानने के कारण लोग छोटे छोटे श्वास लेते हैं। इसीलिए फेफड़ों के अनेक रोगों में ग्रस्त रहते हैं। इसलिए व्यायाम के समय हमें गहरा श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए। जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले हो जायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें। आसन, दण्ड, बैठक कोई भीं व्यायाम आप करें, सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने लगे हैं। और यही प्राणायाम की विधि Deep breathing

के नाम से प्रसिद्ध है।

इङ्गलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी एक पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं—

"पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्यग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिक रूप से भलीभांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भर जावें और फिर सम्पूर्ण श्वास बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तम रूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना है, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानते। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव करलो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी हो गई है।"

वे आगे लिखते हैं—"उत्तम विधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तम रूप से श्वास लेने से रूप-रङ्ग ठीक हो जाता है और मनुष्य का जीवन सुख भोगने के योग्य हो जाता है और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम हो जाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं हो पाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।"

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छे से अच्छा वायु रक्त को शुद्ध करता है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है

और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुफ्फुस में आकर शुद्ध हो जाता है। कुछ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुफ्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैंकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्य कर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीन शास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल वा धूआँ आदि हानिकारक वस्तुएं न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहना चाहिए। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न हो जावें, श्वास को निरन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिए इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तक छाती और आमाशय भली भांति न भर जाएं, लेते ही रहें, इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ आरम्भ में रेचक और पूरक का अनेक बार अभ्यास करें। जब एक दो मास के अभ्यास के पश्चात् श्वास का निकालना और भरना भलीभांति

आजावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है। यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए। रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, बलपूर्वक रोकने से हानि होती है। अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा कुम्भक का समय स्वयमेव बढ़ जाता है। रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेटकर, चलते हुए अथवा पश्चिमोत्तान आसन में भी किया जा सकता है। व्यायाम करने से पहले एक दो बार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि मेरी प्राणायाम पुस्तक में देख लेवें। इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है। लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है। जब हम एक बार में अधिक प्राण अन्दर भर लेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी। इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं। इस प्रकार व्यायाम सम्बन्धी प्राणायाम का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अभ्यासी को रात दिन गहरे श्वास लेने का ही अभ्यास पड़ जाता है। वह व्यायाम वा अन्य प्रकार के परिश्रम से भी थकता नहीं। और उसका शरीर शुद्ध, स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़, निर्मल और दीर्घायुवाला हो जाता है। क्योंकि व्यायाम के प्रत्येक श्वास का सीधा सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य, बल और आयु के साथ है, इसलिए व्यायाम करते समय ब्रह्मचारी क्या सभी को फेफड़ों और गहरे श्वास लेने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। व्यायाम करते समय जब शरीर वा शरीर के किसी अङ्ग को बल लगाना पड़ता है वा विशेष परिश्रम करना पडता है, उस समय

श्वास अन्दर भरा हुआ होना चाहिए और श्वास को अन्दर ही रोकना चाहिए अर्थात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। व्यायाम में किस समय रेचक, पूरक वा कुम्भक करना चाहिए यह आप भली-भांति दण्ड, बंठक आदि की विधि से समझ जायेंगे।

प्रोफेसर राममूर्ति के व्यायामों में श्वास को क्रिया का बहुत ध्यान रखा जाता है। इसलिए जिन दण्ड-बैठकों का वे प्रचार करते थे तथा नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी समझकर उन्हें सदैव करने का अनुरोध किया करते थे, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है:—

'व्यायाम तो सभी पहलवान करते हैं, किन्तु वे व्यायाम के साथ श्वास के नियमों का ध्यान नहीं रखते। इसलिए उनकी शक्ति को हानि पहुँचना स्वाभाविक बात है।"

प्रो० राममूर्ति ने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसलिए इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इसलिए प्रो० राममूर्ति के सभी व्यायामों का (देशी होते हुए भी) विशेष आदर है। क्योंकि उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया है और श्वास-प्रश्वास के नियमों का व्यायाम में विशेष ध्यान रखा है। इसलिए उनके व्यायाम शरीर के अन्य अङ्गों की भांति मानसिक शक्तियों के लिए भी लाभदायक हैं।

प्रो० राममूर्ति ने देशी व्यायामों में दण्ड और बैठकों की बहुत प्रशंसा की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि शरीर के बनाने में इनसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। उनकी दण्ड-बैठक करने की विधि नीचे दी जाती है। दण्ड-बैठक भी एक प्रकार के आसन ही हैं इसलिए दण्डों को दण्डासन भी कहते हैं।

दण्डों के अनेक प्रकार हैं। साधारण दण्ड एक हाथ (बगल) का दण्ड, एक पैर का दण्ड, अंगुली का दण्ड, अंगूठा दण्ड, एक पैर उठाकर दण्ड, भार उठाकर दण्ड, कुर्सी दण्ड और प्रो० राममूर्ति का दण्ड इत्यादि दण्डों के बहुत प्रकार हैं। यहां केवल प्रो० राममूर्ति के दण्ड की विधि जो सभी के लिए तथा विशेषतया ब्रह्मचारियों के लिए सर्वश्रेष्ठ है, खोलकर लिखी जाती है।

दण्ड की विधि

हाथों की हथेलियों को भूमि पर रखकर और पैरों को पीछे फैलाकर दण्ड करने के लिए तैयार हो जावें। पैरों की एड़ियां उठी रहें और पैरों का भार उनकी अंगुलियों पर रहे, दोनों हाथ और दोनों पैरों के बीच में छाती की चौड़ाई के समान अन्तर रहना चाहिए, सामान्यतया दो बालिश्त का अन्तर ठीक रहता है।
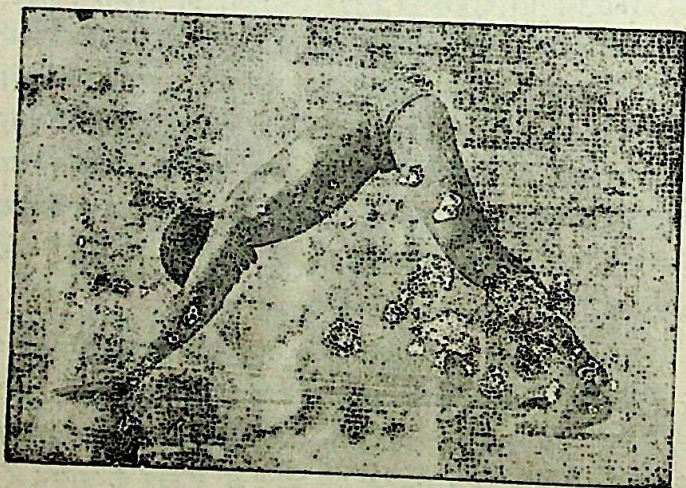
दण्ड की पूर्वावस्था
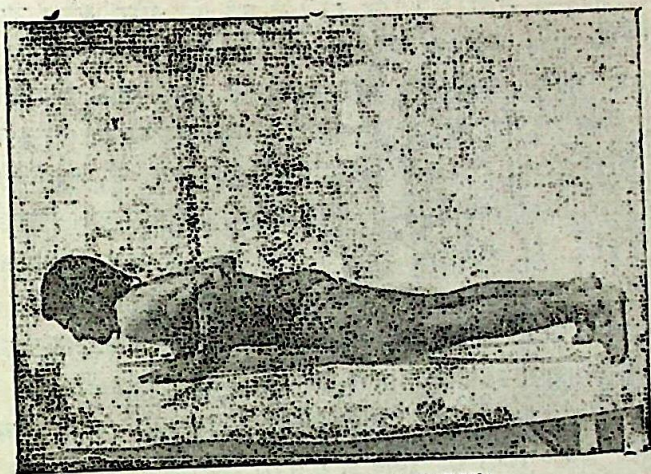
दण्ड की मध्य स्थिति
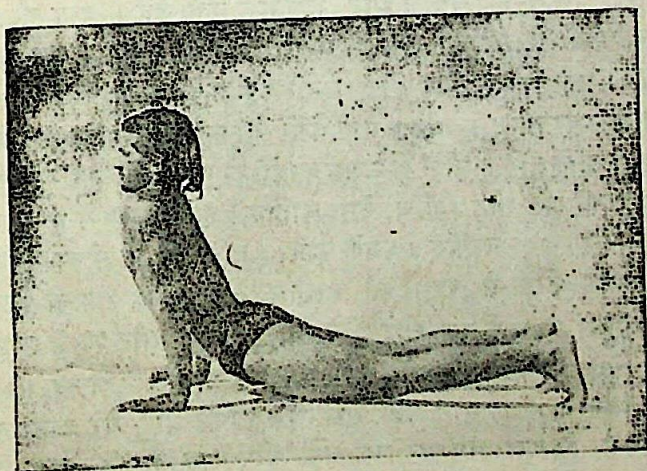
दण्ड की समाप्ति

दण्ड की तैयारी में दण्ड करने से पूर्व पीठ और कमर ऊपर को उठी रहे। कमर को जितना हो सके पीछे खींचना चाहिए। ग्रीवा (गर्दन) छाती की ओर झुकी रहे, यहां तक कि ठोडी वक्षःस्थल (छाती) को स्पर्श करती हो और आंखों की दृष्टि पेट की तोंदी पर हो। पीछे पैरों के पंजे भूमि पर लगे रहें, हाथ और पैर अपने स्थानों को न छोड़ें। आगे की ओर बढ़कर हाथ बिल्कुल सीधे हों। अब कमर और छाती को नीचे ले जायें, हाथों को कोहनियों पर से झुकाते चले जायें। नीचे जाते हुए दण्ड करने से पूर्व लम्बा श्वास खींचें और जितना प्राण आप अपने अन्दर भर सकते हैं भर लें। कोहनियों के ऊपर का भाग छाती की ओर के हाथ पार्श्वों (बगलों) को स्पर्श करेगा, सिर और ग्रीवा सीधी रहेगी, पैर घुटनों से मुड़ने न पावें। छाती को नीचे ले जाकर इतनी नीची करें जितनी वह जा सकती है किन्तु भूमि से स्पर्श न हो। नितम्भ (चूतड़) और मस्तिष्क ऊँचे रहें। दण्ड की इस स्थिति में आकर अपने मन को व्यायाम की क्रिया पर एकाग्र करें। और इसके पश्चात् सिर और छाती को ऊपर उठाकर हाथों को सीधा खड़ा करदें। अब कमर नीची हो जाएगी, मस्तिष्क और छाती ऊंचे होंगे। उठने के समय कन्धों को आगे की ओर खींचकर कमर को खूब तोड़ (खींच) देना चाहिए। इस अवस्था में भी श्वास को रोके रखना चाहिए। इसके पश्चात् मस्तिष्क को नीचा झुकाते हुए और ठोड़ी से छाती को स्पर्श करते हुए जब अपनी पहली स्थिति में आजायें तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। और श्वास छोड़ते हुए वहां तक भीतर के वायु को निकालें, जहां तक निकालना संभव हो, किन्तु कष्ट के साथ नहीं, सुखपूर्वक। फिर धीरे-धीरे श्वास को खींचकर जितना वायु भर सकें भरें, और दण्ड की इसी क्रिया को फिर दूसरी बार करें।

इस प्रकार अपनी शक्ति तथा अभ्यास आदि के अनुसार दण्ड का व्यायाम करें। जितने दण्ड करने से श्वास फूल न जायें उतने दण्ड एक बार में करने चाहियें। और एक दण्ड में न्यून से न्यून ४-५ सैकिण्ड का समय अवश्य लगाना चाहिए। श्वास उखड़ने वा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी दण्ड आदि व्यायाम करते जाने से हानि होती है। एक बार दण्ड करने के पश्चात् कुछ गहरे श्वास लेने चाहियें। थके हुए पुट्ठों पर हाथ फेरना चाहिए और थकान दूर होने पर यदि अधिक करने की इच्छा और शक्ति हो तथा पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध हो तो द्वितीय बार और तृतीय बार भी दण्ड कर लेने चाहियें। दण्ड करते समय श्वास के उतार-चढ़ाव अर्थात् रेचक और पूरक पर हमारा पूरा अधिकार रहे और कुम्भक ध्यानपूर्वक करना चाहिए। श्वास की प्रक्रिया ठीक होने से मनुष्य शीघ्र नहीं थकता, श्वास नहीं चढ़ते, दम नहीं फूलता और उसे उष्णता भी प्रतीत नहीं होती। जब दण्ड करते समय अपनी हथेली और पैर के पंजों पर सम्पूर्ण शरीर का भार झुकाया और उठाया जाता है तब बंधी हुई चाल से श्वास के नीचे आने और ऊपर खींचने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। नसें तन जाती हैं, मुख पर तेज और कान्ति चमचमाती है, आंखें चढ़ जाती हैं, नथुने फूलने लगते हैं. शरीर के जोड़ और गांठ चटकने लगती हैं। छाती, बाहु, स्कन्ध, जांघ और ग्रीवा धीरे-धीरे फूलती जाती हैं। दण्ड पेल कर निवृत्त होने के पश्चात् एक बार भुजदण्ड छाती के खिलने वा फूलने पर जब दृष्टि पड़ती है तो प्रसन्नता से बाहु फड़क कर आप ही आप भुजदण्ड फड़क उठते हैं और सुडौल देह के गर्व में ग्रीवा भी तन जाती है। दण्ड करते समय देह सीधी और तनी रहे साथ ही श्वास की गति भी सधी रहे। शरीर दण्ड करते समय दृढ़ता से जमाई हुई बाहुओं के बल पर जब धीरे-धीरे नीचे झुकायें और

ऊपर उठायें उस समय बिल्कुल सीधा तना हुआ रहना चाहिए। मांस पेशियों वा पुट्ठों को अकड़ाना चाहिए। पैरों के पंजे भी टस से मस नहीं होने चाहियें। अङ्गों को गति देते समय श्वास की गति वा बागडोर को कड़ी वा वश में रखना चाहिए।

साधारणतया सभी का विचार यह है कि दण्ड करने से शरीर के ऊपर आधे भाग का व्यायाम होता है और कटि (कमर) से नीचे के भाग का व्यायाम बैठक करने से होता है। जिस प्रकार दण्ड करने के बहुत प्रकार प्रचलित हैं उसी प्रकार बैठकें भी बहुत प्रकार की हैं। परन्तु प्रो० राममूर्ति की बैठक का प्रकार नीचे दिया जाता है।

सपाट बैठक की विधि
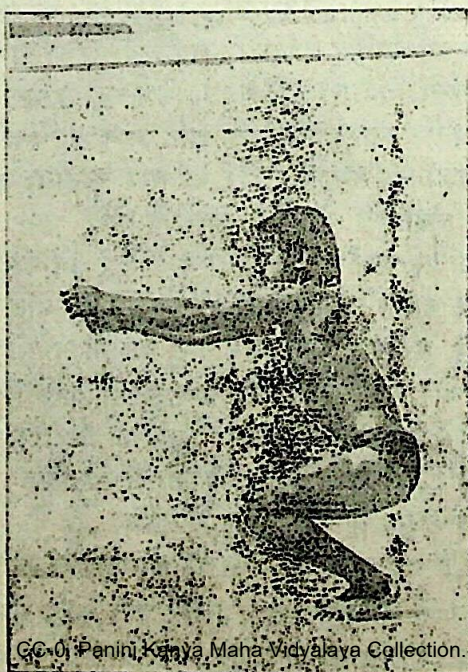
सपाट बैठक

पैरों के बल सीधे खड़े हो जायें। पैरों में लगभग छः इञ्च का अन्तर हो। दोनों हाथ लटकते हुए अपनी-अपनी ओर की जङ्घाओं से स्पर्श करते हों। इसके पश्चात् एड़ियों को भी ऊपर उठालें और पैर के पंजों, अंगुलियों, वा अंगूठों पर ही रहें। छाती तनी हुई अर्थात् आगे को उभरी हुई हो। शरीर सीधा समरेखा में हो। धीरे-धीरे श्वास भरकर कुम्भक कीजिए और अपने आगे ६ इंच के अन्तर पर कूदकर मुट्ठी बांधते हुए धीरे-धीरे बैठना आरम्भ करें। हाथों को भी धीरे-धीरे आगे बढ़ाएं, यहां तक कि कन्धों की सीध में आजाएं। मुट्ठियां बन्द ही रहें, एड़ियां भूमि में न टिकें, पूरा बैठ चुकने पर भी पिण्डलियां और जांघ एक दूसरे को स्पर्श न करें, दोनों में आधा इञ्च का अन्तर रहना ही चाहिए। जब बैठ चुकें तब दोनों हाथों को कोहनियों पर से मोड़ते हुए धीरे-धीरे कन्धों की ओर लायें। हाथ की मुट्ठियां कन्धों से स्पर्श न करें, उनमें भी आधा इञ्च का अन्तर हो। कुछ क्षण वहां ठहर कर धीरे-धीरे उठें। पूरा उठ चुकने पर पीछे कूदकर अपने स्थान पर आजायें; और हाथों को यथापूर्व अपने स्थान पर ले आयें और श्वास को रेचक करके निकाल दें। यह सदैव ध्यान रखें कि धीरे-धीरे उठें और बैठें। बैठक लगाने से पूर्व कुम्भक करें, बैठक की समाप्ति पर रेचक करें, बीच में श्वास न लें, नासिका द्वारा पूरा श्वास भरलें। यह न हो कि बीच में पुनः श्वास खींचना पड़े और निकालते समय सारा ही श्वास निकाल डालें। उठते-बैठते प्रत्येक अवस्था में शरीर सीधा रहे, कटि से लेकर छाती तक का भाग तना रहे, ढीला न हो, छाती कड़ी और आगे निकली रहे। मुट्ठियों को इतने जोर से बांधे रखें कि हाथ थरथराने वा कांपने लगें।

साथ ही मन को जंघाओं और पिण्डलियों पर एकाग्र करके यह ध्यान करें कि मेरे सारे पैर के भागों में बल, शक्ति, दृढ़ता और ओज का संचार हो रहा है। और वेद भगवान् की इस आज्ञानुसार "ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥ (पारस्कर गृ० कां० १ कण्डिका ३ सूत्र २५)" मेरी जङ्घाओं में ओज अर्थात् स्थिर रहने और चलने की शक्ति आरही है और दुर्बलता, अशक्तता दूर हो रही है। एक बार बैठक की क्रिया करने में न्यून से न्यून १-२ मिनट लगाना ही चाहिए। शक्ति अनुसार इस समय को बढ़ा भी सकते हैं। सैकड़ों बैठकों के स्थान पर यदि ये १० बैठक भी कर ली जायें तो पर्याप्त रहती हैं और अधिक लाभ करती हैं। इन बैठकों से जांघ, पिंडली आदि पैर के सभी अङ्गों का और साथ ही हाथों का भी व्यायाम होता है। और हाथ और पैर दोनों के पुट्ठे (मांस पेशियां) बनते हैं। आरम्भ में ये बैठकें ४-५ ही करनी चाहियें और फिर शक्ति के अनुसार बढ़ा सकते हैं। यदि इन्हीं बैठकों को एक ही स्थान पर खड़े होकर किया जाए, आगे पीछे न कूदा जाए तो ये साधारण बैठकें कहाती हैं। कूदने के कारण ही इनका नाम 'सपाट' पड़ा है। दोनों प्रकार से इन्हें कर सकते हैं। जैसी भी इच्छा हो करें, किन्तु सपाट बैठक अधिक लाभ करती हैं।

एक भ्रम और उसका निराकरण

लोगों में यह भ्रम बहुत बुरी प्रकार से फैला हुआ है कि बैठक का व्यायाम ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी के लिए अच्छा नहीं होता। यह सर्वथा निर्मूल है बैठकों से ब्रह्मचर्य में कोई हानि नहीं होती। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी अथवा अन्य जो कोई भी मस्तिष्क से कार्य करनेवाले हैं उन्हें बैठकों की अपेक्षा दण्ड आदि छाती और मस्तिष्क के व्यायाम

अधिक करने चाहिएं। साधारण नियम यही है कि बैठकें दण्डों से आधी होनी चाहियें।

आजकल अखाड़ों में पहलवान लोग दण्ड की अपेक्षा बैठकें अधिक करते हैं। क्योंकि पहलवानों को मोटी-मोटी और चढ़ी हुई सुन्दर जांघें प्रिय होती हैं। और मल्लयुद्ध में टांगों से वे कार्य भी अधिक लेते हैं किन्तु आप बड़े से बड़े पहलवानों को देखें, चाहे उनके शरीर कितने ही सुन्दर, सुदृढ़ वा सुडौल हों, किन्तु उनके मुख निस्तेज, कान्तिहीन और कुरूप पायेंगे।

आजकल अखाड़ों में जो व्यायाम की पद्धति प्रचलित है, उसमें बड़े भारी सुधार की आवश्यकता है। दण्ड-बैठक करते समय मल्ल लोग इतनी शीघ्रता करते हैं कि यन्त्र (मशीन) के अवयव (पुर्जे) उनकी समानता नहीं कर सकते। इसी कारण श्वास-प्रश्वास की क्रिया अत्यन्त वेग से और शीघ्र होने लगती है। ग्रीष्मकाल में उष्णता के कारण कुत्ते के समान हांपने लगते हैं। कोई-कोई खम्भे, रस्सी, वृक्ष वा भित्ति आदि को ही पकड़कर बैठकें लगाते हैं और कटि (कमर) को उस समय सीधा ही नहीं करते। इन बैठकों से बहुत हानि होती है। इस प्रकार शीघ्रता से और अनियमित रूप से दण्ड-बैठक आदि व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं होता।

साधारण बैठक और सपाट (कूद) बैठक ही सब से अच्छी होती हैं। इनके अतिरिक्त भी हनुमान् बैठक, वीर बैठक, मुख फेर बैठक, एक पांव-पसार बैठक, अंगमरोड़ बैठक और घुटने-मरोड़ बैठक इत्यादि अनेक प्रकार की बैठकें हैं, जिनके नियमित अभ्यास से लाभ होता है। बैठकों के समान दौड़ना, तैरना इत्यादि पैरों के अनेक व्यायाम हैं। किन्तु शरीर जितना सुन्दर और सुडौल दण्ड-बैठक के लगाने से होता है उतना दौड़ आदि अन्य व्यायामों से नहीं।

दौड़

प्रकट रूप में तो दौड़ने से टांगों का ही अधिक व्यायाम होता है, किन्तु दौड़ने का व्यायाम सारे शरीर के लिए उपयोगी है। इस से पैरों के अतिरिक्त छाती, फेफड़ों और पेट आदि का भी व्यायाम होता है। दौड़ से तो फेफड़ों को अत्यन्त लाभ पहुँचता है। क्योंकि दौड़ते समय भस्रा वा भस्त्रिका प्राणायाम बहुत अच्छी प्रकार से होता है, जिससे फेफड़े वज्र वा इस्पात के समान सुदृढ़ होजाते हैं और रक्त-सञ्चार के लिए भी बहुत अच्छा है। निःसन्देह टांगों का बल तो दौड़ से बढ़ता ही है। परन्तु फेफड़ों को शुद्ध और पुष्ट करने, हृदय को गतिशील बनाये रखने, और सुदृढ़ करने तथा रक्त को शुद्ध करने के लिए भी दौड़ने का व्यायाम बहुत उत्तम है। दौड़ने से मनुष्य में स्फूर्ति (चुस्ती) तथा कर्मण्यता आती है। फेफड़ों के बलवान् होने से कास (खांसी) प्रतिश्याय (जुकाम) आदि रोग नहीं सताते। बालक, युवा, वृद्ध और स्त्री सभी के लिये भागने का व्यायाम उत्तम है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व दौड़ लगाना ब्रह्मचारी और विद्यार्थी के लिये तो अत्यन्त हितकर है।

ब्रह्मचारी ही नहीं, सभी को नंगे पांव दौड़ने से अधिक लाभ होता है। बाल्यावस्था तथा वृद्धि अवस्था में यदि जूता आदि पहनकर दौड़ा जाएगा तो पांव का स्वाभाविक विकास और वृद्धि नहीं हो सकेगी। इसीलिए पैरों के विकास का ही ध्यान रखकर ऋषियों ने "उपानच्छत्रधारणं वर्जय" जूता और छत्र (छाता) का धारण निषेध किया है। दौड़ते समय पांव उठा-उठाकर पंजों के ऊपर ही दौड़ना चाहिये अर्थात् पैरों का अगला भाग ही भूमि पर टिका रहे, एड़ियां भूमि में न टिकें। छाती आगे की ओर निकली और तनी रहे तथा कन्धे पीठ की ओर झुके रहें। मुट्ठी बांधकर

दोनों हाथों को छाती के बराबर रखें। नेत्र दृष्टि सम्मुख रहे। भागते समय पैरों को इतना ऊपर उठाकर ले जायें कि पैर की एड़ियां नितम्ब (चूतड़) को स्पर्श करने को होजायें। जितने लम्बे पग (कदम) दौड़ते समय रख सकें उतना ही अच्छा है। जिस समय दौड़ आरम्भ करें तो पहले ही वेग (तेजी) से न दौड़ें। शनैः शनैः वेग को बढ़ाते जायें। दौड़ने के लिए आपको अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए। न ही दौड़ को सहसा (एकदम) बन्द करना चाहिए। दौड़ चुकने के पश्चात् तुरन्त ही खड़े हो जाना, बैठ जाना वा सो जाना बड़ा ही हानिकारक है। अतः दौड़ने के पश्चात् जब तक श्वास वेग से चलता रहे तब तक भ्रमण करना ही लाभप्रद है। दौड़ने के पश्चात् जब तक शरीर पूर्णतया ठण्डा न हो जाये तब तक जल से हाथ, मुंह, पैर धोना, स्नान करना और खाना पीना कदापि नहीं करना चाहिए। दौड़ने के लिए स्थान खुला हुआ और शुद्ध वायुवाला हो। वहां की भूमि सम हो और कंटक कंकर से रहित हो। विषैले सर्प कीड़े आदि का कोई भय न हो। दौड़ने के समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास खींचने और कुछ रोकते हुये धीरे-धीरे छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। लम्बे और गहरे श्वास लेने और छोड़ने से व्याकुलता (घबराहट) और श्रान्ति (थकावट) बहुत न्यून होती है। अत्यन्त वेग से श्वास चलने पर भी नासिका द्वारा ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

मुख खोलकर उसके द्वारा श्वासोच्छ्वास करते हुए दौड़ना बहुत हानिकारक है। दौड़ते समय अङ्गों को शिथिल नहीं रखें। हाथों को पीछे की ओर भली-भांति खींचे रहें।

आरम्भ-आरम्भ में दौड़ सौ गज वा एक फर्लाङ्ग से अधिक नहीं लगानी चाहिए। प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी बढ़ाकर एक वा दो

मील वा इससे भी अधिक का अभ्यास अपने सामर्थ्यानुसार करना चाहिए। १०-१५ मील तक भागने का भी अभ्यास किया जा सकता है किन्तु मुख्य बात तो सामर्थ्य और पुष्टिकारक भोजन की है। पुष्टिकारक भोजन के अभाव में तथा शक्ति से अधिक दौड़ने से भी शरीर को हानि होती है। आरम्भ में कुछ दूर दौड़ने पर श्वास फूल जाता है और दौड़नेवाला घबराने लगता है। किन्तु साहस बांधकर दौड़ते रहने से व्याकुलता हट जाती है और साहस भी बढ़ जाता है। गहरे श्वास भी दौड़ में अत्यन्त सहायक हैं। हमारे कबड्डी आदि बहुत से ऐसे देशी खेल हैं जिनमें दौड़ पर्याप्त मात्रा में हो जाती है। यह सदैव ध्यान रखें कि दौड़ते-दौड़ते जब उष्णता बढ़ जाए और श्वास बहुत शीघ्र-शीघ्र वा वेग से आने लगे और फेफड़ों में न समावे तब दौड़ बन्द कर देनी चाहिए। दौड़ आदि पैरों के व्यायाम से हाथी के सूंड के समान पुष्ट जङ्घायें हो जाती हैं।

जो लोग रात दिन बैठे रहते हैं और दौड़, भ्रमण आदि पैरों का व्यायाम नहीं करते उनकी टांगें निर्बल हो जाती हैं। जांघों का मांस सूख जाता है अथवा मेद (चर्बी) बढ़कर जङ्घाओं का मांस ढीला और लटकता रहता है और वे कुरूप और अत्यन्त स्थूल हो जाती हैं। जांघें सर्वथा पतली, अत्यन्त मोटी और ढीली नहीं होनी चाहियें। जिन जङ्घाओं में अगुली गाड़ने से न गड़े, ऐसी कठोर जङ्घायें स्वस्थ और सबल मानी जाती हैं। किन्तु दौड़ और बैठक के बिना ऐसी जङ्घायें कैसे हो सकती हैं। दौड़ आदि व्यायाम ही जङ्घाओं और पिण्डलियों को सुन्दर, पुष्ट और सबल बनाता है।

दौड़ते समय भी मन को टांगों की पिण्डली और जङ्घा आदि भागों पर एकाग्र करना चाहिए और यह ध्यान करना चाहिए कि मेरे इन अङ्गों की निर्बलता दूर हो रही है और वेद की आज्ञा के

अनुसार "जङ्घयोर्जवः" जङ्घाओं में वेग, स्फूर्ति और बल इत्यादि और "पादयोः प्रतिष्ठा" (अथर्व० १९।६०।२) पांवों (पिण्डलियों) में स्थिरता, सुदृढ़ता वा सुन्दरता आदि गुणों का सञ्चार और प्रवेश होरहा है। इस प्रकार की दृढ़ भावना से वेद की इस पवित्र आज्ञा के अनुसार अत्यन्त लाभ पहुँचता है। पांवों के जङ्घा, पिण्डली आदि भागों में स्फूर्ति, वेग, बल, शक्ति, सुन्दरता, स्थिरता और सुदृढ़ता आदि गुणों का अनुभव अभ्यासी थोड़े दिन में करने लगता है। उसकी जङ्घायें और पिण्डलियां बहुत शीघ्र पुष्ट और बलवान् हो जाती हैं।

तैरना

साधारण व्यायामों में से तैरना भी हमारे शरीर वा स्वास्थ्य दोनों के लिए एक बड़ा उपयोगी व्यायाम है। तैरने से शरीर का बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। बालक युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी के लिए तैरने का व्यायाम लाभप्रद है। यदि विचारपूर्वक किया जाये तो किसी अवस्था में भी किसी को हानि नहीं होती। और ब्रह्मचारी के लिए तो तैरने का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है। इससे वीर्यरक्षा वा ब्रह्मचर्य की साधना में बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य के प्रेमी यदि प्रतिदिन एक घण्टा तैरने का व्यायाम करलें तो स्वप्नदोषादि के द्वारा वीर्यनाश का भय वा आशङ्का नहीं रहती। प्रमेह, स्वप्नदोष आदि वीर्यभ्रष्टता के रोग वा दोष बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। क्योंकि यह वीर्य सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए सर्वोत्तम औषध है। जो ब्रह्मचारी अन्य साधनों के साथ तैरने का व्यायाम करते हैं उनको स्वप्नदोष आदि रोग नहीं सताते और वे स्थिरवीर्य वा ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। इसलिए वेद भगवान् ने जल की महिमा का गान किया है—

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्" ॥ (अथर्ववेद १।४।४)

अर्थात् जल में अमृत और औषध है ।

जल के महत्त्व को हमारे प्राचीन पुरुष ऋषि-महर्षि लोग भली-भाँति जानते थे । इसलिए जलाशयों और नदियों के तटों पर वे अपने आश्रम बनाकर निवास करते थे । यही कारण था कि वे सब अमोघवीर्य वा ऊर्ध्वरेता होते थे ।

व्याकरण के अतिप्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं—

"अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्रागस्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः" ॥ (अ० ४ पा० १ सू० ७८)

८८ हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि हुए हैं उन में से अगस्त्य प्रभृति आठ ऋषियों ने सन्तति उत्पन्न की ।

कितने ही विचारशील लोग आज-कल भी इस विषय में अनुभव कर चुके हैं कि युवकों के स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोग केवल प्रतिदिन एक घण्टा शुद्ध जल में तैरने से दूर हो जाते हैं। इन रोगों में जब किसी औषध से लाभ नहीं होता तब जल में तैरने का अभ्यास अचूक औषध का काम करता है । इसलिए ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की साधना वा वीर्यरक्षा के लिये और स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोगग्रस्त व्यक्तियों को इन रोगों से छुटकारा पाने के लिये प्रतिदिन नदी आदि में तैरने का अभ्यास करना चाहिये । जिससे वे उर्ध्वरेता, अमोघवीर्य वा स्थिरवीर्य वाले बन सकें । तैरने में एक विशेष बात यह है कि इस से व्यायाम और स्नान दोनों साथ-साथ हो जाते हैं । इसलिए सहज में ही व्यायाम और स्नान दोनों का एक ही साथ लाभ हो जाता है । तैरने के व्यायाम

से शरीर की अतिरिक्त उष्णता जल के स्पर्श से दूर हो जाती है और रोमकूप स्वच्छ होकर शरीर शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो जाता है। यथार्थ में तडाग, नदी, नाले आदि जलाशय ही प्राकृतिक स्नान करने के यथोचित स्थान हैं जिन में तैरते वा स्नान करते समय भाग-दौड़ करने अथवा इसी प्रकार की अन्य जलक्रीडा करने से शरीर और मन दोनों में ही स्वच्छता, स्फूर्ति और उत्साह आदि सद्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। तैरने से शरीर के सब स्नायुवों और अंग-प्रत्यंगों का स्वयं ही पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। नदी के बहते हुए जल की लहरों के परस्पर टकराने से एक विद्युत् उत्पन्न होती है। जो शारीरिक साधारण रोगों को शीघ्र दूर करके हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव डालती है। तैरने में वैसे तो सभी अवयवों का व्यायाम होता है किन्तु छाती और फेफड़ों को विशेष लाभ पहुंचता है। तैरने से छाती चौड़ी और सारा ही वक्षःस्थल परिपुष्ट और विस्तीर्ण हो जाता है। फेफड़े अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाते हैं। तैरनेवाले का सम्पूर्ण शरीर नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल, शक्तिशाली, स्फूर्तिमान् और उत्साहयुक्त बन जाता है। गहरे जल में घुसकर प्राणायामपूर्वक धीरे-धीरे बल और आयु की वृद्धि की प्रबल भावना मन में रखते हुए तैरने से विशेष लाभ होता है। जल में गोता मारने से भी बड़ा अच्छा व्यायाम होता है।

तैरना वैसे भी एक प्रकार की विद्या है। इसलिए इसे प्रत्येक मनुष्य को सीख ही लेना चाहिये। अपनी वा दूसरों की प्राणरक्षा के लिए जीवन में इसकी आवश्यकता पड़ ही जाती है। डूबते समय हमारी पोथी वा पुस्तकें कुछ काम नहीं आतीं। तैरना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं, थोड़ासा यत्न करने पर छोटे-छोटे बालक भी इसे सीख लेते हैं। तैरना भी क्या, जल में घुसकर हाथ तथा

पैरों को ही तो हिलाना है। हम देखते नहीं कि छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े तक भी तैरना जानते हैं। छोटे-छोटे पशुओं के बच्चे भी किसी नदी तडाग आदि जलाशय में पहुँचते हैं तो आप ही आप बिना सिखाये तैरने लग जाते हैं। फिर मनुष्य जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी ठहरा, उसके लिये तैरना कौनसी कठिन बात है. हम प्रतिदिन देखते हैं कि जिन ग्रामों वा नगरों के निकट नदी, तडाग आदि जलाशय होते हैं वहाँ के छोटे-छोटे बालक भी तैरने में अत्यन्त निपुण और निष्णात होते हैं। वे परस्पर देखा-देखी तैरना बिना सिखाये ही सीख जाते हैं।

हां तैरनेवाले को भी सावधान रहना चाहिये। अपनी शक्ति से अधिक तैरने का व्यायाम करने से मनुष्य अधिक थककर गहरे जलाशय नदी में डूब सकता है। जिससे प्राणों की हानि हो सकती है। वहुत अधिक तैरने के कारण लोगों को उन्माद, मूर्च्छा, मृगी और पागलपन हो जाता है। हमारे ऋषियों ने "अत्यन्तं स्नानं वर्जय" अति स्नानादि को वर्जित किया है। इसलिये एक डेढ़ घण्टे से अधिक तैरना भी अच्छा नहीं। जब तैरने का अच्छा अभ्यास हो जाये और किसी प्रकार का सन्देह न रहे तभी गम्भीर जलाशय वा गहरे जल में घुसना चाहिये। बिना तैरने के अच्छे अभ्यास के गम्भीर जलाशय में घुसने से प्राणहानि होने का भय रहता है।

पाश्चात्य देशों के लोग भी तैरने के महत्त्व को भली-भांति समझते हैं। वहां तैरने के लिये बड़ा उत्साह पाया जाता है। अच्छा तैरनेवाले बालकों को ही नहीं, किन्तु अच्छे तैराक युवक-युवतियों का बड़े-बड़े उत्सवों में पारितोषिक देकर तैरने के लिए उत्साह बढ़ाया जाता है। वहां के डाक्टर और शरीर-शास्त्र के पण्डित लोग भी निम्न प्रकार की सम्मतियों द्वारा तैरने का प्रचार करते हैं—

"तैरने से मनुष्य में अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है। जीवन का सञ्चार होता है। शरीर के अङ्गों और प्रत्यङ्गों में नवीन जीवन प्राप्त होता है। बल बढ़ता है और मनुष्य अद्भुत स्वास्थ्य का सञ्चय करता है।"

इस प्रकार के प्रचार से दूसरे देशों में तैरने का महत्त्व बढ़ गया है और वहां के स्त्री-पुरुषों में तैरने का बहुत प्रेम और आदर हो गया है। हमें भी अपने देश में इसी प्रकार तैरने का प्रचार करना चाहिए। जिससे तैरने के व्यायाम द्वारा ही हमारे देश-वासियों का वीर्यसम्बन्धी रोगों से छुटकारा हो, और ब्रह्मचर्य रक्षा में सफलता पाकर जीवन का आनन्द ले सकें।

तैरते समय प्रत्येक को जल की पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए। गन्दे, मलिन, मटमैले, दुर्गन्धयुक्त, सड़े हुए तथा वर्षाकाल के नवीन जल में स्नान करने से सिर में पीड़ा तथा अनेक प्रकार के दाद आदि चर्मरोग हो जाते हैं। अत एव शुद्ध, पवित्र, निथरे हुए निर्मल जल के जलाशयों में ही तरने का व्यायाम करना चाहिए। इस प्रकार के शुद्ध जल में तैरने से ही विशेष लाभ हो सकता है अन्यथा हानि होने की सम्भावना है। अन्य व्यायामों के समान तैरने के समय भी लंगोट के अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए।

भ्रमण वा वायुसेवन

रोगी, निर्बल और वृद्ध (बूढ़े) मनुष्यों के लिए ही भ्रमण वा टहलने को भी व्यायाम कहा जा सकता है। जो व्यक्ति आलस्य, रोगादि के कारण कुछ भी व्यायाम न करता हो तो उसका भ्रमण से कुछ न कुछ व्यायाम हो ही जाता है। भ्रमण को कोमल प्रकृति वाले बाबू लोग, रोगी वा बड़े-बड़े पेटवाले भले ही व्यायाम का स्थान दे दें किन्तु कोई ब्रह्मचर्य का पथिक वा ब्रह्मचारी भ्रमण

को ही व्यायाम समझकर इसी के द्वारा ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहे तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी। भ्रमण के द्वारा कोई सात जन्म में भी ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए तो शरीर और मन को थकानेवाला कठोर व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। वैसे भ्रमण रोगी आदि के लिए ठीक है। भ्रमण करने वाले को नगर वा ग्राम से बाहर ऐसे स्थान पर ही जहां का वायु शुद्ध, शीतल, स्वास्थ्यप्रद हो भ्रमण करना चाहिए। भ्रमण वा वायुसेवन के लिए सूर्योदय से पूर्व प्रातः काल का समय ही उत्तम है शौच आदि से निवृत्त होकर प्रतिदिन कुछ मील नियमित भ्रमण करने वा टहलने से स्वास्थ्य का लाभ अवश्य होता है। भ्रमण करते समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास लेने से अधिक लाभ होता है।

मल्लखम्भ का व्यायाम

मल्लखम्भ के व्यायाम का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है। मल्लखम्भ के व्यायाम से शरीर बहुत शीघ्र ही स्वस्थ और उन्नत हो जाता है। शरीर में व्यर्थ का मेद (चर्बी) नहीं बढता। शरीर के सभी छोटे बड़े जोड़ वा अवयव सुदृढ़ हो जाते हैं। इसके व्यायाम से पेट की नसों को भी बहुत लाभ पहुँचता है। हाथों के स्नायु सुदृढ़ होजाते हैं। सारे शरीर में एक विशेष शक्ति और स्फूर्ति आजाती है। शरीर बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल बन जाता है। मल्लखम्भ पर जो व्यायाम किये जाते हैं वे एक प्रकार के आसन ही हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से आसनों के समान ही शरीर में स्फूर्ति, हलकापन और आरोग्य की वृद्धि होती है। जो मल्ल (पहलवान) मल्लखम्भ का व्यायाम करते हैं वे अपने शरीर को इतना वश में कर लेते हैं कि वे मल्लयुद्ध (कुश्ती) में बहुत ही कम

हार खाते हैं। उनके ऊपर दूसरों के दाव पेच नहीं चलते। क्योंकि मल्लखम्भ का व्यायाम करनेवाले मल्लविद्या में बड़े निपुण होजाते हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से बहुत शीघ्र और बड़ी अच्छी प्रकार से अपना शरीर वश में आजाता है और जिसका शरीर वश में होता है वह मल्लखम्भविद्या में कुशल होता है। मल्लखम्भ का व्यायाम किसी शिक्षक से ही सीखकर करना चाहिए। बालक इसको शीघ्र सीख सकते हैं, बड़ी आयु वा बुढ़ापे में इसका सीखना बड़ा कठिन है।

मल्लखम्भ शीशम की चिकनी और दृढ़ लकड़ी का होना चाहिए। कमर के समान इसकी मोटाई ठीक है। मल्लखम्भ गाड़ने के पश्चात् भूमि से ६-७ फुट ऊंचा रहना चाहिए। मल्लखम्भ को वृक्ष वा मकान की छाया में ही गाड़ना चाहिए जिससे जल और धूप से उसकी लकड़ी को हानि न पहुंचे। मल्लखम्भ के चारों ओर की मिट्टी अच्छी होनी चाहिए और मल्लखम्भ को कभी-कभी तेल लगाकर उसकी लकड़ी को चिकना करते रहना चाहिये। १२ वर्ष की आयु से ऊपर किसी भी अवस्था में इस व्यायाम को कर सकते हैं। सभी अवस्थाओं में यह लाभदायक है किन्तु वृद्धि अवस्थावाले युवक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिये यह मल्लखम्भ का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है।

मुग्दर का व्यायाम

मुग्दर का व्यायाम बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये कि आदि सृष्टि से ही चला आरहा है और अपने देश का भी है। यह बहुत प्राचीन व्यायाम है। हमारे प्राचीन साहित्य में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि प्राचीन-काल में मुग्दर का व्यायाम बहुत उन्नत था। किन्तु हम अपनी अनेक विद्या वा कलाओं के समान व्यायाम सम्बन्धी बहुत-सी

आवश्यक बातें भी भूल गये हैं। पुनरपि देश में मुग्दर के व्यायाम सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान और आदर की भावना पाई जाती है। अखाड़ों में पहलवान लोग तो प्रायः सभी मुग्दर फेरते ही हैं किन्तु स्कूल-कालिजों में भी इसका थोड़ा बहुत प्रचार पाया जाता है। मुग्दर को जोड़ी भी कहते हैं। मुग्दर फेरने के बहुत हाथ और नियम हैं। इसके हाथ किसी मुग्दर फिराने वाले से सीख लेने चाहियें। इनको लेख द्वारा सिखाना वा समझाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।
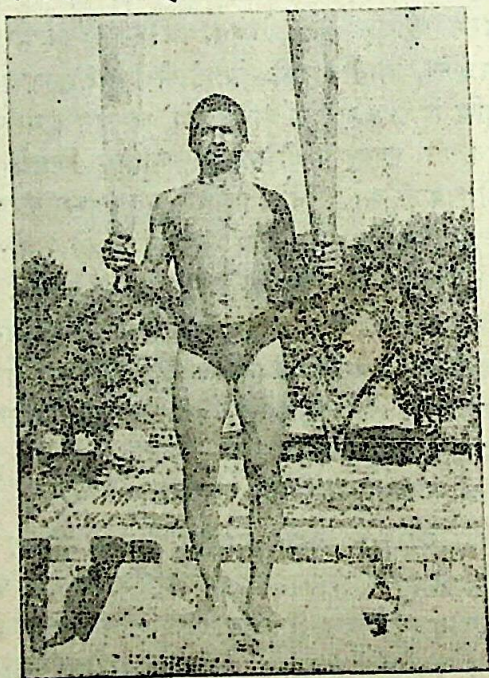
मुग्दर की जोड़ी न बहुत हल्की न ही बहुत भारी होनी चाहिये। आरम्भ में तो मुग्दर का अधिक भारी होना बहुत हानि-

कारक है। अपनी शक्ति के अनुसार ही भार होना चाहिए। जब पूर्ण अभ्यास हो जाये तो भारी मुग्दर घुमाना चाहिए। किन्तु वह भी अपनी शक्ति के ही अनुसार हो। लम्बे मनुष्य के लिये लम्बा और छोटे (नाटे) मनुष्य के लिए छोटा मुग्दर ठीक रहता है इससे विपरीत करने पर चोट लगने का भय रहता है। मुग्दर को दृढ़ता से पकड़ना चाहिए। पकड़ते समय हाथ की अंगुलियां तथा बाहु (बाजु) बाहर की ओर रखने चाहियें। प्रथम एक ही मुग्दर को दक्षिण और वाम दोनों हाथों से घुमाने का अभ्यास करना चाहिए। जब अच्छा अभ्यास हो जाए तो एक साथ पृथक्-पृथक् मुग्दर दोनों हाथों से घुमाने चाहियें। मुग्दर घुमाते समय छाती भीतर घुसी हुई न हो, सम्मुख उभरी और निकली हुई होनी चाहिए। मुग्दर के व्यायाम से यों तो शरीर के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम होता है और सब अंगों पर बल पड़ता है किन्तु हाथ की अंगुलियाँ, पञ्जा, कलाई, कोहनी, कलाई के नीचे का भाग, मोड़े और कोहनी के बीच का भाग अर्थात् भुजदण्ड, कन्धे (मोढ़े) तथा पीठ के पीछेवाले पुट्ठों पर अधिक बल पड़ता है और इनका बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। ये सब अंग सुदृढ़ और बलवान् होजाते हैं। कलाई, भुजदण्ड और हाथों की माँस पेशियों को सुदृढ़, सुन्दर और सुडौल बनानेवाला मुग्दर से बढ़कर अन्य कोई व्यायाम नहीं है। केवल मनोरंजन के लिए नहीं किन्तु शारीरिक उन्नति के के लिए मुग्दर का एक सुन्दर और श्रेष्ठ व्यायाम है।

डम्बल के व्यायाम को लोग हाथों के लिए अच्छा समझते हैं और आज-कल मुग्दर के व्यायाम को प्रायः छोड़ते जारहे हैं। किन्तु मुग्दर के आगे डम्बल का व्यायाम तो कुछ भी नहीं। वैसे मुग्दर से हाथों का व्यायाम तो होता ही है, किन्तु अनेक वर्षों का मेरा अनुभव है कि एक साथ भुजदण्ड आदि हाथों के सब अंग प्रत्यङ्गों को तथा छाती, फ़ेफड़े, सिर, रीढ़ की हड्डी आदि अन्य

सभी अंगों को बहुत शीघ्र स्वस्थ, सुदृढ़ और सुडौल बनानेवाला मुग्दर के समान देशी और विदेशी व्यायामों में कोई भी व्यायाम नहीं है। १६ वर्ष से अधिक आयु के ब्रह्मचारियों को मुग्दर का व्यायाम सायंकाल अन्य कठोर व्यायामों के समान प्रतिदिन करना चाहिए।

पत्थर की नाल (चकली) उठाना, गोला फेंकना भी हाथों के लिए अच्छा व्यायाम है। सैण्डो का डम्बल्स का व्यायाम भी हाथों का अच्छा व्यायाम है। किन्तु लिखनेवाले व्यक्ति को कमानीदार डम्बल्स का व्यायाम नहीं करना चाहिए। इससे हाथों में भी कभी कभी कम्प का रोग हो जाता है।

कूदना

कूदना-फांदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई अनेक प्रकार की होती है—लम्बी, ऊंची, पैर बाँधकर, दौड़ कुदाई इत्यादि। कुदाई के समय हाथ-पैर ढीले रखने से बहुत न्यून लाभ होता है इसलिए हाथ-पैरों को खिंचा हुआ और कठोर रखना चाहिए। कूदते समय प्राणायाम करने से अत्यन्त लाभ होता है वैसे तो कूदने से समस्त ही अंगों का अच्छा व्यायाम होता है किन्तु मुख्यतया उदर (पेट) और पैरों को विशेष बल प्राप्त होता है। कूदने से शरीर में स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर भागता है और शरीर के प्रत्येक अवयव में रक्त का सञ्चार होने लगता है। दौड़ने, खेलने, कूदने आदि के व्यायाम से वैसे तो बड़ी आयुवालों को भी लाभ होता है किन्तु १४ वर्ष की आयु तक के बालकों के लिए दौड़ना, कूदना, फाँदना खेलना इत्यादि बहुत ही लाभदायक है। छोटे बालकों से इसी प्रकार के व्यायाम कराने चाहियें जिनमें दौड़ना, कूदना, फाँदना अधिक पड़े। १२ वर्ष से छोटी आयु के बालकों से दण्ड, बैठक, मुग्दर और मल्लयुद्ध आदि कठोर व्यायाम नहीं कराने चाहियें।

आसन

आसनों का व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिए अति उपयोगी है। वैसे आसन बहुत हैं किन्तु पांच-सात आसन जो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य प्रेमी को नित्य-प्रति करने चाहियें, उनके विषय में अति संक्षेप से लिखा जाता है। अधिक विस्तार के लिए हमारी 'आसनों के व्यायाम' पुस्तक पढ़ें, जो पृथक् प्रकाशित हो गई है।

१— शीर्षासन
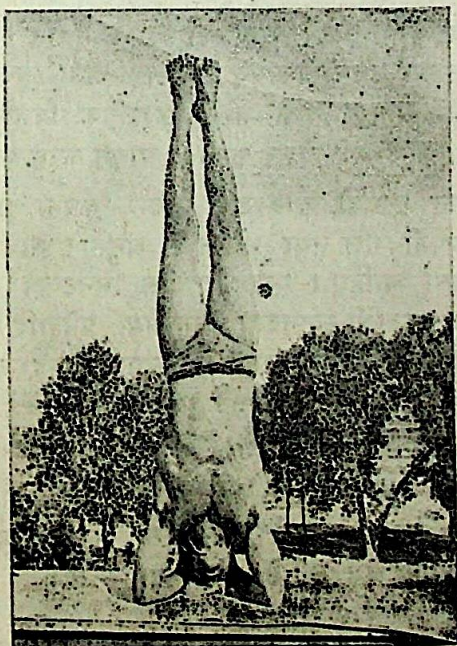
इसके करने की विधि इस प्रकार है— पहले भूमि पर आसन बिछा कर उस पर कपड़े की गोल गद्दी बनाकर रखें और उस पर शिर रख दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिला शिर के दोनों ओर दृढ़ता से रखें। पांव को मोड़कर शिरके समीप ले आवें, तत्पश्चात् शरीर को शनैः शनैः ऊपर को उठाते हुए शिर के बल खड़े हो जावें। मस्तिष्क और शिर के बीच का भाग ही वस्त्र पर टिकाना चाहिए। शरीर नितान्त सीधा रहे, पांवों की अंगुलियां ऊपर को खींची हुई और नेत्र खुले रहने चाहियें। घुटने भी मुड़ने न पावें, श्वास-प्रश्वास की क्रिया पूर्ववत् चलती रहे।

शीर्षासन करने के पश्चात् कुछ समय तक सीधा खड़ा रहना चाहिये। कुछ आसनों के अभ्यासियों का मत है कि जितने समय तक शीर्षासन करें उतने ही समय तक सीधा खड़ा रहने से विशेष लाभ होता है। यदि समय के अभाव से अधिक विलम्ब तक खड़े न रह सकें तो अन्य खड़े होकर करने के आसन करने चाहियें।

शीर्षासन एक दो सैकिण्ड से आरम्भ करना चाहिए और शनैः शनैः अपनी शक्ति तथा भोजन के अनुसार इसके करने का समय बढ़ा लेना चाहिए। पन्द्रह वा बीस मिनट का अभ्यास हो जाने पर वीर्य सम्बन्धी स्वप्नदोष, धातुक्षय, प्रमेहादि विकार दूर होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। स्वास्थ्य सुन्दर तथा चेहरा लाल हो जाता है। बुद्धि तथा नेत्रज्योति बढ़ती है, जठराग्नि तीव्र होती है, बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) ठीक हो जाते हैं। अर्श, गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बहुमूत्र प्रभृति उदररोग तथा फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, कण्डू (खाज), पामा, पीनस आदि चर्मरोगों में भी लाभदायक है।

❀❀❀

२—हस्तपादांगुष्ठासन
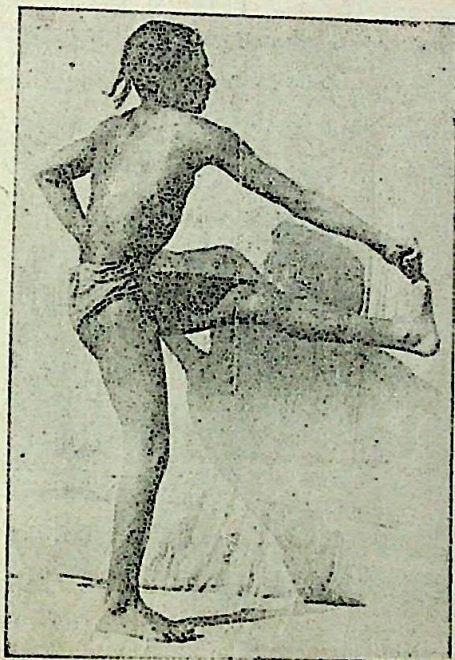
दोनों हाथों को कटि (कमर) पर रखकर पीधे खड़े हो जावें, एक पांव को शनैः शनैः ऊपर को उठावें, पांव घुटने में से न मुड़े जब पांव सम्मुख आजावे तब जिस ओर का पांव हो उसी हाथ से पांव के अंगूठे को पकड़ें, श्वास अन्दर रहना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ तथा पाँव से भी करें। इस आसन को चित्त लेटकर भी कर सकते हैं।

इस आसन के करने से ग्रीवा, कटि और उदर के विकार नष्ट होते हैं, पिंडली जङ्घा आदि के लिए भी यह लाभदायक है।

३—सिद्धासन
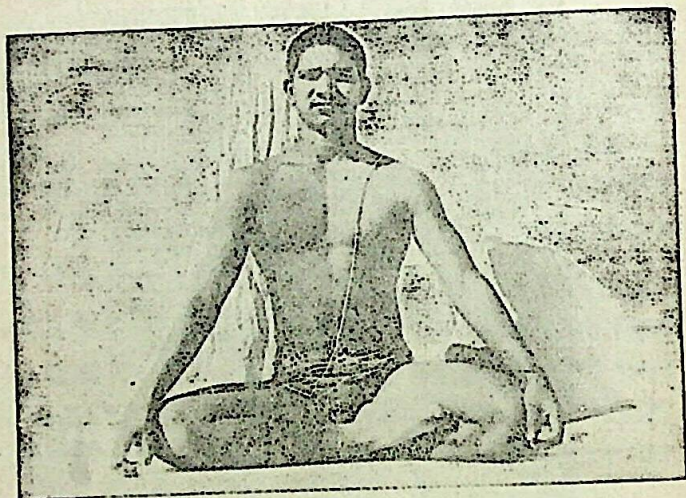
समतल स्थान पर बैठकर बायें पांव की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीचके स्थान पर जमाकर रखें और दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर तथा पंजा बांयें पाँव की जंघा और पिण्डली के बीच में रहे। दोनों पांवों के गट्टे मिले हुए रहें, ठोड़ी का झुकाव कुछ नीचे की ओर करें अथवा कण्ठमूल में लगावें, हाथ घुटनों पर रहें, दृष्टि नासिकग्र भाग पर स्थिर रहे, मेरुदण्ड ग्रीवा आदि सभी सम रेखा में सरल रहने चाहियें।

यह आसन योगाभ्यास ध्यान आदि के लिए सर्वोत्तम है, ब्रह्मचर्य की रक्षा में भी परम सहायक है, अतः इसका अभ्यास कम से कम एक दो घण्टे का तो अवश्य ही कर लेना चाहिए। इस आसन को किसी भी समय पढ़ते-लिखते, खाते-पीते कर सकते हैं

इस आसन के अभ्यास से मन स्थिर, जठराग्नि दीप्त और हृदय बलवान् होता है। श्वास, कास, अतीसार बहुमूत्र, स्वप्नदोष, प्रमेहादि रोग नष्ट होते हैं। विषयवासना शांत होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। इसकी सिद्धि से ब्रह्मचर्य की भी सिद्धि होती है, अतः ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि तथा वीर्यरक्षा के लिये इसका विशेष अभ्यास करना चाहिए।

४ — पश्चिमोत्तानासन
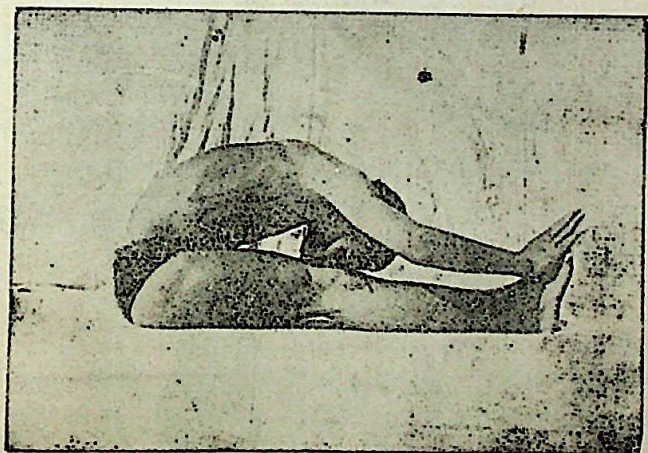
भूमि पर बैठकर दोनों पाँवों को सीधा पसार दें, कुछ आगे को झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़ लें और साथ ही श्वास को बाहर निकालकर पेट को अन्दर खेंचें तथा शिर घुटनों पर रखें, यदि हो सके तो पांवों के बीच में भूमि पर रखने का प्रयत्न करें। पांव घुटनों में से न मुड़ें और पांवों के पंजे भी आगे को तने रहें।

पेट के लिए यह आसन सर्वोत्तम है, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, पेट हल्का तथा कोमल रहता है, पेट की नस-नाड़ियां मल रहित होजाती हैं, चर्बी कम होकर पेट छोटा होजाता है। अजीर्णता, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदरपीड़ा प्रभृति उदरविकार समूल नष्ट होते हैं। यकृत् और प्लीहा निर्दोष होजाते हैं, कुबड़ापन दूर होता है, कद और आयु की वृद्धि होती है।

५—सर्वाङ्गासन
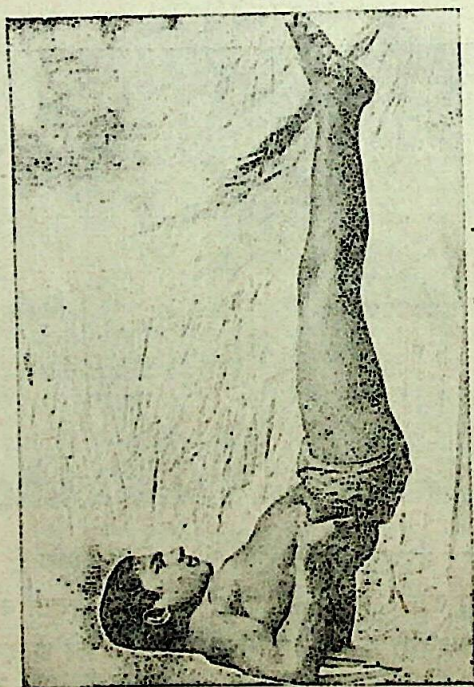
समभूमि पर चित्त लेट जावें और हाथों को सीधा पसारदें, पश्चात् पांवों को शनैः शनैः ऊपर को उठावें और हाथों को कटि

पर लगाकर सहारा लेकर इतना सीधा करदें कि केवल कन्धों के ऊपर का भाग ही भूमि पर टिके। सम्पूर्ण शरीर खिचा हुआ हो और श्वास अन्दर रहे, ठोड़ी कण्ठमूल में लगावें तथा दृष्टि पांव के अंगूठों पर जमावें।

इस आसन के करने से यकृत्, प्लीहा, पक्वाशय, आंतें शुद्ध होकर जठराग्नि तीव्र होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। कण्ठ के रोगों में लाभदायक है। मिर्गी, गठिया तथा वीर्यरक्षा के लिये उत्तम है।

६—हलासन

सर्वाङ्गासन की स्थिति से ही पांवों को शनैः शनैः शिर के पीछे टेकदें, पांव सीधे रहें और हाथों को भूमि पर सीधा पसारदें तथा श्वास को बाहर निकाल दें।

इसके लाभ भी सर्वाङ्गासन के समान ही हैं। इसके करने से विशेषतया आंतों को शक्ति मिलती है, कद बढ़ता है, कटिशूल में उत्तम है।

७—मयूरासन

इस आसन को करने के हाथों के पंजे पांवों की ओर कर दृढ़ता से भूमि पर जमावें, हाथों के पंजों में एक बालिश्त से अधिक अन्तर न रहे। कोहनियों को मिलाकर नाभि पर लगा पांवों को ऊपर उठावें, दोनों पांव मिले हुए तथा तने हुए रहने चाहियें, शिर ऊपर को उठा हुआ रहे। मोर की भांति सम्पूर्ण शरीर का भार पंजों पर सन्तुलित रहना चाहिए। आरम्भ में इस आसन का अभ्यास किसी ऊँचे स्थान मेज, कुर्सी, चबूतरे आदि पर करना चाहिए।
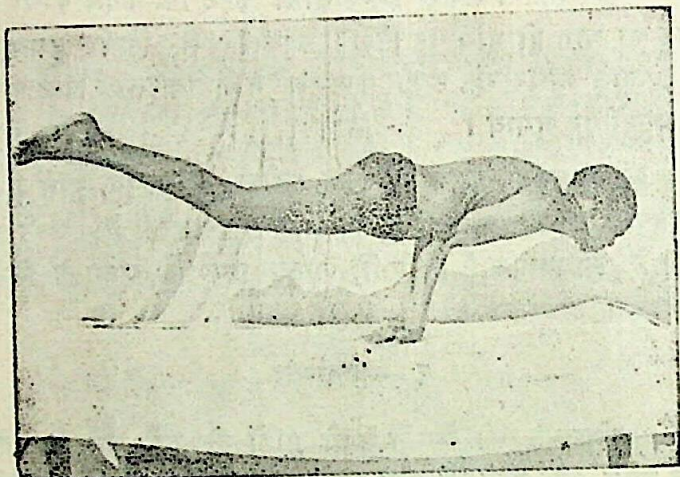
मयूरासन

इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होने के कारण पेट के रोग नहीं होते। हाथों के पहुंचे दृढ़ होते हैं, पेट की चर्बी भी कम हो जाती है। संग्रहणी, अतिसार आदि आंतों के रोगों में लाभदायक है।

॥ इति ॥

मुद्रक—आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, दयानन्दमठ, रोहतक। फोन २८७४

ब्रह्मचर्य के साधन

(पञ्चम भाग)

स्नान

मुख तथा मुख सम्बन्धी अवयवों की शुद्धि के पश्चात् सारे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य-शरीर से नाक. कान, चक्षु आदि इन्द्रियों तथा मल-मूत्र आदि द्वारों से मल निकलता है। क्योंकि शरीर के अन्दर प्रतिक्षण कार्य होता ही रहता है जिससे मल भी उत्पन्न होता रहता है और शरीर स्वभाव से ही भीतर के मल को सदा बाहर निकालता रहता है। गुदा आदि मल-द्वारों तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के अतिरिक्त शरीर के असंख्य त्वचा-छिद्रों (रोमकूपों, मसानों) के द्वार प्रतिक्षण स्वेद (पसीना) आदि के रूप में मल निकलता रहता है। यह मल पसीने के साथ मिश्रित होता है। पसीने का जल तो भाप बनकर उड़ जाता है, किन्तु मल भाग त्वचा पर (छिद्रों के मुख पर) एकत्रित हो जाता है और छिद्रों के मुख को बन्द कर देता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि शरीर से छूनेवाले वस्त्र बहुत शीघ्र मैले हो जाते हैं और उनसे दुर्गन्ध आने लगती है। पसीना शरीर से प्रतिक्षण निकलता है क्योंकि यह रक्त का विकार है, जो भाप बनकर मनुष्य के शरीर से सदैव प्रत्येक ऋतु में ही निकलता है। ग्रीष्म ऋतु तथा कठिन शारीरिक परिश्रम करने पर तो इतना अधिक निकलता है कि यह सबको स्पष्ट दिखाई देता है किन्तु शीतकाल तथा साधारण अवस्था में यह भाप के रूप में निकलता हुआ स्पष्ट दिखाई नहीं देता। और यदि इसे

भली-भांति धोया न जाए तो थोड़े ही समय में चर्म पर इसकी तह जमकर एक पतली सो झिल्ली बन जाती है और बालों के छिद्र वा रोमकूप बन्द होने से शरीर के भीतर का नया मल बाहर नहीं निकलने पाता और वह भीतर ही इकट्ठा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त बाहर की धूल (मिट्टी) भी उड़-उड़ कर शरीर की त्वचा पर पड़ती और जमती रहती है। अतः इस जमे हुए मल को दूर करने तथा शरीर को शुद्ध रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य के लिए स्नान करना अत्यावश्यक है। स्नान से शरीर के सब छिद्र खुल जाते हैं और छिद्रों के द्वारा मल विसर्जन की क्रिया ठीक होती रहती है जो स्वास्थ्य के लिए कितनी आवश्यक है, यह पहिले लिखा जा चुका है। जहाँ इन छिद्रों से मल निकलता है, इनके शुद्ध होने पर मनुष्य इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में वायु और प्रकाश ग्रहण करता है। केवल नासिका से ही श्वास न लेकर शरीर के असंख्य रोमकूपों द्वारा भी मनुष्य श्वास लेता रहता है। यह सारा कार्य मल के जम जाने से बन्द हो जाता है और इन छिद्रों के बन्द होने पर हमारा नाक, मुख भले ही खुला रहे, किन्तु हमार जीना असम्भव है।

उदाहरण

एक बार एक विज्ञापनदाता कम्पनी ने अपना प्रचार करने के लिये एक मनुष्य के सारे शरीर पर भली-भांति विज्ञापन चिपका दिये और उसे प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक सारे नगर में घुमाते रहे। सायंकाल वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चिकित्सार्थ एक वैद्य को बुलाया गया। वह बड़ा चतुर था। उसने तत्काल सारे विज्ञापन उतरवाकर उसे भली-भांति स्नान कराया फिर अच्छी प्रकार तेल का मर्दन (मालिश)..कराया। तब उसकी मूर्च्छा दूर होकर चेतना आई.। इसकी मूर्च्छा का कारण केवल मात्र विज्ञापनों

के चिपकाने के कारण त्वचाछिद्रों का रुक जाना था। यदि स्नान आदि के द्वारा उसके बन्द हुए त्वचाछिद्रों को नहीं खोला जाता तो वह कुछ काल पीछे मर जाता। इस सत्यता को प्रकट करनेवाले ऐसे ही अनेक सच्चे दृष्टान्त मिलते हैं।

इस लिए भारत वर्ष में प्राचीनकाल से ही प्रतिदिन स्नान करने की परिपाटी चली आरही है। हमारे पुरुषा भलीभाँति समझते थे कि स्वास्थ्य और शरीरशुद्धि के लिए स्नान कितना अनिवार्य है। इसलिये ऋषि महर्षियों ने प्रत्येक मनुष्य की दिनचर्या का इसे आवश्यक अङ्ग बनाया है। पौराणिक काल में तो स्नान को स्वर्ग-प्राप्ति का साधन बताकर धर्म का अङ्ग बना दिया गया। उसी अन्धविश्वास के कारण आज भी पुराने ढंग के हिन्दू स्त्री पुरुष इस स्वर्गप्राप्ति के लोभ में सारे कार्तिक मास में प्रतिवर्ष प्रायः बहुत शीतल जल से श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं। उनके कल्पित स्वर्ग का तो कोई अस्तित्व है ही नहीं, किन्तु इसकी आड़ में एक मास स्नान करनेका लाभ तो उन्हें मिल ही जाता है,इस प्रकार भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में प्रातःकाल स्नान करने की चाल इस समय भी न्यूनाधिक पाई जाती है। योरुप, अमीरका आदि अन्य महाद्वीपों वा देशों में भारतवर्ष के समान लोग स्नान नहीं करते। बहुत बड़े लोग ही उन देशों में प्रतिदिन स्नान करने के अभ्यासी मिलेंगे। भारत में अब भी जो इस प्रकार की विशेषतायें मिलती हैं, यह सब ऋषियों की कृपा है। इसी कारण स्नान को भारतीय सभ्यता का भक्त अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझकर प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक करता है। किसी कारण से किसी दिन स्नान न कर सके तो अपने आपको पापी समझता है। प्रतिदिन स्नान कर अपने को यश और पुण्य का भागी समझता है। बात तो विचार करने पर यह सत्य की कसौटी पर ठीक ही उतरती है कि स्नान करने में पुण्य और धर्म तो है, परन्तु

वह केवल पवित्रता का है। शरीर की शुद्धि और पवित्रता केवल मात्र शुद्ध जल के स्नान से ही होती है। इसलिए मनु जी महराज लिखते हैं:—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति (मनु० अ० ५ श्लोक १०६)

जल से शरीर के बाहर के सब अवयव शुद्ध और पवित्र होते हैं। महर्षि दयानन्द जी महराज ने भी सन्ध्या, उपासनादि नित्य-कर्म में स्नान को प्रथम स्थान दिया है वे अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं:—

"गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं, सिखलावें। प्रथम स्नान इस लिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्यता आदि होते हैं। (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

महर्षि पतञ्जलि जी महाराज अपने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक शास्त्र में लिखते हैं:—

पवित्रं वृष्यमायुष्यं श्रमस्वेदमलापहम्।
शरीरबलसन्धानं स्नानमोजस्करं परम्॥
(चरक संहिता सूत्रस्थान अ० ५ श्लोक ६१॥)

अर्थात् स्नान से शरीर पवित्र हो जाता है। वीर्य और आयु की वृद्धि होती है। स्नान से श्रम (थकावट) पसीना तथा मल दूर होता है। शारीरिक बल बढ़ता है तथा ओज की अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी प्रकार सुश्रुत में महर्षि धन्वन्तरि जी लिलते हैं:—

निद्रादाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम्।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम्॥
तन्द्रापापोशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्द्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥
(सुश्रुत चिकित्सा० अ० २४ श्लोक० ५७-५८)

स्नान-निद्रा, जलन, थकान, पसीना, खाज और प्यास को नष्ट करता है। हृदय के लिए हितकारी है। मैल दूर करने वाले साधनों में सर्वश्रेष्ठ साधन है। सब इन्द्रियों का शोधन (शुद्धि,) तन्द्रा (ऊंघना) और पाप का नाश करता है, स्नान से चित्त प्रसन्न होता है। पुंस्त्वशक्ति की वृद्धि अर्थात् पुरुषार्थ बढ़ता है, रक्त शुद्ध होता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अन्य अनेक ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के लाभ लिखे हैं। एक ग्रन्थकार उपर्युक्त लाभ लिखता हुआ इतना अधिक लिखता है—

प्रातःस्नानं दुःस्वप्नविध्वंसनं रूपद्योतकरं शरीरसुखदम् ॥

अर्थात् प्रातः स्नान करना दुष्टस्वप्नों (स्वप्नदोष) का सर्वनाश करने वाला है। सुन्दरता-कान्ति-तेज देनेवाला और शरीर के लिए सुखकारी है।

यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका है कि मलिनता जो रोगों का घर है, उसे दूर करने के लिए स्नान सर्वोत्तम साधन है। बाह्य शारीरिक मलिनता स्नान द्वारा जब दूर हो जाती है तो शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है जिससे शरीर के सब रोमकूप (मसाम) खुल जाते हैं और शरीर से प्रतिक्षण निकलने वाला दूषित मल भलीभांति स्वेद (पसीना) द्वारा विना किसी बाधा के निकलता रहता है। इससे शरीर और रक्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है और बाहर की शुद्ध वायु छिद्रों द्वारा भीतर जाती रहती है। इस प्रकार शरीर का मल वा विष भलीभांति निकलते रहने से तथा पर्याप्त मात्रा में शुद्ध वायु की प्राप्ति से रक्त अत्यन्त शुद्ध, विकाररहित और शरीर निर्मल, पवित्र, नीरोग स्वस्थ और सुन्दर हो जाता है। प्रतिदिन स्नान न करने के कारण शरीर के मलिन होने से छिद्रों के बन्द हो जाने और वायु के निर्बाध आवागमन के रुक जाने से खुजली, दाद, फोड़े, फुन्सी आदि रक्त

विकार और इसी प्रकार के अनेक रोगों से मनुष्य असंख्य हानि और कष्ट उठाते रहते हैं। पता नहीं क्यों लोग इतने आलसी और मूर्ख हैं कि जिस स्नान पर एक कौड़ी का व्यय नहीं होता और लाभ का ठिकाना नहीं, फिर भी इतने लाभदायक कर्तव्य (कर्म) को नित्य प्रति करने में कष्ट मानते हैं वा आलस्य करते हैं।

केवल अकेले स्नान से ही बीसियों प्रकार के रोगों से मनुष्य का शरीर सुरक्षित रहता है और मनुष्य पूर्ण स्वस्थ बन जाता है। प्राचीन ऋषियों की इस महत्वपूर्ण बात से प्रभावित होकर जर्मन के प्रसिद्ध डाक्टर लूई कोहनी ने स्नान द्वारा चिकित्सा (Bath system) नाम की एक पद्धति ही चला डाली और इसी विषय पर एक बड़ा ग्रन्थ भी लिखा है। जिसमें प्रत्येक रोग की चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार के स्नानों द्वारा ही करनी लिखी है। आज योरुप आदि देशों में इसका खूब प्रचार भी हुआ है। ज्यों ज्यों समय बीतता जायेगा स्नान के माहात्म्य को संसार समझता जाएगा और विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली स्वास्थ्य प्रदायिनी ऋषियों की इस दैनिक पवित्र स्नान क्रिया को अवश्य अपनायेगा। तभी सब रोगों से मुक्ति होगी और मनुष्य पूर्ण स्वस्थ और सुखी होकर जीवन का आनन्द पायेगा। क्योंकि हमारे पूर्वज साक्षात्कृतधर्मा ऋषि महर्षि परम पिता परमात्मा के परम पवित्र कल्याणकारी वेदज्ञान से सर्वथा परिचित थे। इसलिए वे अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहकर प्राणिमात्र की उन्नति के लिए वेदज्ञान का प्रचार देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में करते थे। संसार का उपकार करना ही उनके जीवन का ध्येय वा मुख्य उद्देश्य था। इसलिए जीवनोपयोगी इस स्नान क्रिया का प्रचार वे क्यों न करते।

जल का सदुपयोग मनुष्य के लिए कितना कल्याणकारी है

इस विषय में स्नान के समय पाठ किये जानेवाले कुछ ही वेदमन्त्रों से यह स्पष्ट प्रकट होता है—

वेद में शुद्ध जल वा स्नान की महिमा

ओ३म् —आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ ऋक्० १०।९।१॥

(आप:) जल (हि) सचमुच (मयोभुव:) सुखदायी (ष्ठा) होते हैं। (ता:) वे जल [न:] हमें [ऊर्जे] बल के लिए [महे] महत्व के लिए (रणाय-चक्षसे) स्वस्थ देखने के लिए (दधातन) धारण करें।

सार यह है—जल के सदुपयोग द्वारा हमें सुख, बल, ओज, महत्ता, बोलने की शक्ति पैदा होती है।

ओ३म्—यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:।
उशतीरिव मातर: ॥ ऋक्० १०-९-२ ॥

(व:) तुम्हारा (य:) जो (शिवतम:) अत्यन्त कल्याणकारी (रस:) रस है [जल है] (उशती: मातर: इव) सन्तान से स्नेह करनेवाली माताओं की भांति (इह) इस समय वा इस लोक में (न:) हमें (तस्य) उसका (भाजयत) भागी कीजिए।

भावार्थ:—जल परमात्मा का अत्यन्त कल्याणकारी रस है जो हमारी स्नेहमयी माता के समान प्राणिमात्र का पालन पोषण और रक्षा करता है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में "अप्सु विश्वानि भेषजा अग्निं च विश्वशम्भुवम्" यह आया है। अर्थात् जलों के भीतर सब औषधियां हैं और संसार का कल्याण करनेवाली अग्नि है।

ओ३म्—आप: पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ऋक्० ११-१९-१० ॥

(आप:) जल (मम तन्वे) मेरे शरीर के लिए, विस्तार के लिए (च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य को देखने के लिए (वरूथम्+भेषजम्) श्रेष्ठ औषध [पृणीत] प्रभु कृपा से दें।

इस मन्त्र में जल को विस्तार देनेवाला, दीर्घायु और चिरकाल तक देखने के लिए नेत्रज्योति देनेवाली श्रेष्ठ औषध बताया है।

स्नान (जल) पाप का विनाशक है

ओ३म्— इदमाप: प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥ ऋक्० १०-९-८॥

(मयि) मुझ में (यत् किं च) जो कुछ भी (दुरितम्) दोष (पाप) है, (वा) अथवा (यत्) जो (अहम्) मैंने (अभि दुद्रोह। सृष्टि नियम का उल्लङ्घन किया हो (वा) अथवा (यत्) जो (शेपे) गाली दी हो (उत) और (अनृतम्) मिथ्या बोला हो (आप:) जल में शीतलता का आधान करनेवाला भगवान् मेरे (इदम्) इस सब दुरित (दोष को पाप) को (प्रवहत) भली प्रकार बहा दे।

भावार्थ:—जल अनृत भाषण, सृष्टि नियमों का उल्लङ्घन तथा इसी प्रकार अन्य अनेक दोषों को (अपने शीतलता गुण के कारण) दूर करनेवाला है।

इसी प्रकार जल की महिमा वेद भगवान् ने खूब गाई है। अथर्ववेद १-४-४ में "अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्" जल में अमृत और औषध है ऐसा आया है।

इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि भगवान् ने जल के भीतर एक अद्भुत शक्ति कूट-कूट कर भर रखी है जो प्राणियों की प्यास को बुझाती है, शरीर का मल जिससे धुलता है और यदि युक्तिपूर्वक जल का सेवन (स्नानादि के द्वारा) किया जाये तो कोई रोग पास न फटके। यदि भूल से कोई नियम विरुद्ध आचरण कर

बैठे और दुर्भाग्य से प्रकृति रोग के रूप में हमें दण्ड दे दे तो इससे बचने का उपाय जल है। जिसमें सब औषध हैं। जल सुखों का भण्डार, बल, ओज, शीतलता (शान्ति), शक्ति, पुष्टि, महत्ता; वक्तृत्वशक्ति, नेत्रज्योति आदि के प्रदान करनेवाला है सब रोगों की एकमात्र औषध है। वेद ने जल को संसार का सर्वश्रेष्ठ कल्याण-कारी रस माना है और इसकी माता के समान उपमा दी है। क्योंकि "जितना माता से सन्तानों को उपदेश पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।" (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)।

महर्षि दयानन्द ने माता की प्रशंसा में उपर्युक्त शब्द कहे हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि जिस प्रकार माता अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सन्तान की रक्षा और हित चाहती है उसी प्रकार भगवान् का सर्वश्रेष्ठ जल भी प्रभु के प्रिय पुत्रो (सब प्राणियों) की रक्षा और हित के लिए पूर्ण आहुति दे देता है। जिस प्रकार प्राणियों का प्राण वायु है, इसी प्रकार जल भी क्या वनस्पति क्या प्राणी सभी के जीवन का आधार है। जल की आवश्यकता पड़ने पर यदि जल न मिले उस समय इसके मूल्य का पता चलता है। जल न मिलने पर खेती सूख जाती है। क्या जङ्गम क्या स्थावर सारा संसार ही व्याकुल हो उठता है, उस समय याद आता है :–

"यो वः शिवतमो रस उशतीरिव मातरः" आहा ! प्रभु यह तेरा रस सचमुच कल्याणकारी है और यह हमारी माता के समान रक्षा करता है।

संस्कृत में जल का नाम जीवन रखना जल की महत्ता को प्रकट करता है। जल के बिना जीवन असम्भव है, इसको सिद्ध

करने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य के शरीर में लगभग ३/४ भाग जल का है। फिर यह किस बाड़ी का बथुआ है जो बिना जल जी सके। इसलिए जहाँ जल होता है वहां ही यह सदैव से बसता आया है। इसी सत्य को प्रकट करने के लिए वेद शास्त्रों ने जल की महिमा का इतना वर्णन किया है।

जगदम्बा ने अपने प्रिय पुत्रों [जीवों] के कल्याण के लिये जल जैसा शीतल, शान्तिदायक अमृतरूपी पदार्थ रच दिया। किन्तु हम हैं उसके अभागे कपूत, जो इस अमृत से भी दूर भागते हैं। स्नान तो दूर रहा हमारा जलपान भी ठीक नहीं होता। पर्याप्त मात्रा में जल न मिलने से पाचन क्रिया ठीक नहीं होती और जल के सहारे ही शरीर के मल स्वेद [पसीना] और मूत्र के द्वारा बाहर निकलते हैं और शरीर से निकला हुआ हमारा देह-मल जल से स्नान द्वारा धुल कर तन और मन को शान्त, पवित्र और निर्मल कर देता है। मनुष्य को बल, शक्ति, तेज, कांति, रूप और सुन्दरता आदि गुण शरीर शुद्धि से ही प्राप्त होते हैं। शरीर शुद्ध होने से आरोग्य और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। क्योंकि मलिनता रोगों की जननी है। और स्वस्थ मनुष्य ही दीर्घजीवी होता है। इस प्रत्यक्ष को सिद्ध करने के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं। शरीर की मलीनता से मन भी मलीन रहता है।

"मलीन वा गन्दा मन ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। काम रिपु मलीन मन में ही आकर डेरा जमता है और जगी हुई कामवासना ब्रह्मचर्य रूपी भवन की जड़ों को खोखला कर डालती है।"

कामवासना को शान्त करने के लिए शीतल जल का स्नान एक श्रेष्ठ साधन है। यह अनुभव सिद्ध और सर्वसम्मत सिद्धांत है। जाग्रत अवस्था में ही नहीं स्वप्न अवस्था में सताने वाले दुःस्वप्न वा काम विकारों का भी स्नान शमन करता है।

योगी याज्ञवल्क्य भी इस सत्य को इस प्रकार प्रकट करता है :—

गुणाः सदा स्ननापरस्य साधोः,
रूपं च तेजश्च बलश्च शौचम् ।।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वम्,
दुःस्वप्ननाशश्च यशश्च मेधाम् ।।

हे सज्जनो ! सदैव स्नान करने वाले मनुष्य को रूप, तेज, बल, पवित्रता आयुष्य, आरोग्यता, अलोलुपता, बुरे स्वप्नों का न आना, यश और मेधादि गुण प्राप्त होते हैं ।

ऊपर लिखे प्रमाणों से सिद्ध होता है कि स्नान सभी के लिये अत्यन्त लाभदायक होने से प्रतिदिन करना आवश्यक है । ब्रह्मचर्य के लिये विधिपूर्वक स्नान करना अमृत की घूंट भरना है । वेद के कोष निघण्टु में उदक (जल) के एकशत (सौ) नाम आये हैं । इसमें "रेतः शुक्रम्" जो सब धातुओं के सार वीर्य के ही नाम हैं और इसी प्रकार ओज तेज जो शुद्ध वीर्य वा उस से उत्पन्न हुई शक्ति के नाम हैं, ये निघण्टु में पढ़े हैं । ये भी जल के नाम हैं । इसी प्रकार अमृत भी जल का नाम लिखा है । इस से यही सिद्ध होता है—

"कि यदि ब्रह्मचारी स्नानादि के द्वारा जल का उचित प्रयोग करता रहे तो जल वीर्यरक्षा में अमृत के समान सहायक है और यह ब्रह्मचारी को शुक्र (वीर्य) से परिपूरित करता हुआ ऊर्ध्वरेता, ओजस्वी, तेजस्वी बना देता है ।"

जल की विशेषता प्रकट करनेवाले और भी अनेक "सर्पिः, घृतम् क्षीरम्, अन्नम्. भेषजम्, पवित्रम्, शुभम्, महायशः, स्वः" आदि नाम भी इसके वहीं लिखे हैं । जिससे प्रकट होता है कि जल का सदुपयोग दूध, घी के समान हृष्ट-पुष्ट करनेवाला है, अन्न के

समान जीवन का आधार तथा (अन्न के उत्पादन में मुख्य हेतु है) सर्वरोग नाशक औषध है। इसलिए इसको आरोग्य और स्वास्थ्य प्रदान करके शुद्ध, पवित्र करनेवाला कहा गया है। यह मनुष्य को कल्याण मार्ग का पथिक बनाकर महान् और यशस्वी बनाता है। तब ही मानव अन्त में स्व:=स्वर्गलोक की प्राप्ति करता और मोक्ष पद को पाता है। इसलिए ब्रह्मचारी को जल को तुच्छ वस्तु समझ कर इससे उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ब्रह्मचर्य पालन में जो विघ्न और बाधायें हैं, स्नान उनका वध (सर्वनाश) करके वीर्यरक्षा में सच्चे मित्र के समान सहायता करता है। किन्तु यह लाभ शास्त्रीय विधि के अनुसार स्नान करने से होते हैं।

स्नान की शास्त्रीय विधि

लोग प्राय: स्नान करने में बड़ी शीघ्रता करते हैं। समय पर शीतल, उष्ण मलीन वा स्वच्छ जैसा भी जल मिल जाता है, झट-पट शरीर पर दो चार लोटे डाल लेते हैं। शरीर सारा भीगा है वा सूखा इसका भी ध्यान नहीं रखते। स्नान के समय शरीर को रगड़ने के लिये हाथ लगाने में इन्हें कष्ट होता है। मूर्खों ने ऐसी-ऐसी लोकोक्तियां भी घड़ रखी हैं कि—

"स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना बहुत शीघ्र होना चाहिये।"

भला इस प्रकार के स्नान से भी कोई लाभ हो सकता है? यह तो स्नान का नाम ही करना है। इस से लाभ के स्थान पर हानि होती है। जब सारा शरीर ही नहीं भीगता तो शरीर का मैल कैसे दूर हो सकता है? उल्टा थोड़ सा जल डालने से शरीर के भीतर की उष्णता ऊपर आ जाती है और वह शान्त न होने से हानि वा कष्ट पहुँचाती है। इसलिए जब तक स्नान से शरीर

शीतल और शान्त न हो जाए और उस पर लगा हुआ मल तथा विष सर्वथा न धुल जाए तब तक उसका नाम स्नान रखना मानो स्नान का तिरस्कार करना है। इसलिए सभी ऋतुओं में पर्याप्त शुद्ध शीतल जल से पर्याप्त समय तक ब्रह्मचारी को प्रतिदिन रगड़ रगड़ कर अर्थात् घर्षण स्नान करना चाहिये। तभी देह के सभी मल दूर होकर शुद्ध शीतल और शान्त होता है। शीत ऋतु की अपेक्षा उष्ण ऋतु में अधिक समय तक स्नान करना चाहिए। उष्णकाल में तो प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिए ही दोनों समय का स्नान अत्यन्त आवश्यक और बहुत लाभदायक है किन्तु ब्रह्मचारी को तो सभी ऋतुओं में दोनों समय स्नान करना भोजन से भी आवश्यक समझना चाहिये। कितने ही ब्रह्मचर्य प्रेमी रात्रि को शयन से पूर्व भी स्नान करते हैं। इस से उन्हें बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें निद्राकाल में ब्रह्मचर्य का परम शत्रु स्वप्नदोष नहीं सताता।

"स्वप्नदोष के रोगी को चाहे वह गृहस्थी हो वा ब्रह्मचारी सायंकाल अवश्य स्नान करना चाहिये।"

जिन को स्वप्नदोष होता है उनको दोनों समय का स्नान अथवा तीसरी बार का भी स्नान बहुत लाभ करता है। स्वप्नदोष की संख्या अवश्य घट जाती और किसी किसी का यह रोग वा व्याधि स्नान से ही हट जाती है। जिस सौभाग्यशाली स्त्री वा पुरुष को यह महारोग नहीं होता वह भी भविष्य में दोनों समय के स्नान से सदैव निश्चिन्त और सुरक्षित (बचा) रहता है।

"सायं प्रातः का स्नान स्वप्नदोष के शस्त्र के प्रहार को रोकने की एक ढाल है।"

सभी ऋतुओं में ब्रह्मचारी ही नहीं, आबाल वृद्ध वनिता सभी नर-नारियों को गृहस्थ, वानप्रस्थ वा संन्यासियों को, यों

कहिये कि सभी वर्णाश्रम वालों को सदैव शीतल जल से स्नान करना चाहिये। उष्ण जल का प्रयोग वा स्नान ब्रह्मचारी के लिये अत्यन्त हानिकारक है। उष्ण जल तो ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य का सर्वनाश करने वाला है। मुझे यह पढ़कर अत्यन्त दुःख और आश्चर्य होता है कि ब्रह्मचर्य की पुस्तकों में भी लेखकों ने शीतकाल में उष्णजल से स्नान करने का विकल्प कर दिया है किसी किसी ने तो खुली आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूं उन्होंने यह भारी पाप किया है।

"उष्ण जल से स्नान करना तो वीर्यनाश का निमन्त्रण देना है"

ब्रह्मचारी क्या ? किसी भी ब्रह्मचर्य प्रेमी को कभी भूलकर भी उष्ण जल से स्नान नहीं करना चाहिये। शीतल जल का स्नान जहां ब्रह्मचर्य के लिये पीयूषपान है इसी प्रकार सभी के लिये और सब प्रकार से स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। जहां शीतल जल के स्नान से शरीर के भीतर की व्यर्थ की उष्णता बाहर या ऊपर आकर शान्त हो जाती है इसी प्रकार बाहर की उष्णता दबकर भीतर चली जाती है। इसी से मनुष्य की जठराग्नि प्रदीप्त और प्रबल हो जाती है। यह सभी के अनुभव की बात है कि भूख कितनी ही न्यून क्यों न हो किन्तु स्नान के पश्चात् अवश्य बढ़ जाती है।

हमारे प्रान्त में लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। "ब्राह्मण नहाया और गजब आया।" कोई जन्म जाति का ठेकेदार बिना विचारे दुःख न मान जाये। यह सत्य इस प्रकार है :— ब्राह्मण अध्ययन अध्यापन, यजन याजन तथा उपदेश आदि का कार्य बैठकर ही करता है, यह सब मस्तिष्क का ही कार्य है। इसलिए ब्राह्मण को अन्य वर्णों की अपेक्षा शारीरिक श्रम बहुत न्यून करना पड़ता है,

इसलिए उसे भूख कम लगती है। किन्तु शीतल जल के स्नान से उसे भी भूख के कष्ट का अनुभव होता है। इस लोकोक्ति का यही अभिप्राय है। इसीलिये महर्षि धन्वन्तरि ने "स्नानमग्नेश्च दीपनम्" ऐसा कहा है। अर्थात् अन्य लाभों के अतिरिक्त स्नान जठराग्नि को दीप्त करता है, अर्थात् भूख को जगाता व लगाता है। भारतवर्ष जैसे उष्ण देशवासियों के लिए तो शीतल जल का स्नान लाभदायक है ही किन्तु शीतप्रधान पाश्चात्य देशों के लिए भी शीतल जल का स्नान लाभ ही करता है। वहां के लोग भी इस की उपयोगिता समझने लगे हैं।

योरुप के एक डाक्टर निकोल्स लिखते हैं :—"शीतल जल से मत डरो। मैंने शीतल वायु के लगने से लोगों को रोगी होते देखा है, परन्तु शीतल जल से स्नान करने पर किसी को रोगी पड़ते नहीं देखा। मैं चालीस वर्षों से निरन्तर शीतल जल से स्नान किया करता हूं। जब वायु की शीतलता (ठण्ड) थर्मामीटर में शून्य डिग्री से भी १० डिग्री नीचे हो गई थी और जल की एक-एक बूंद फर्श पर पड़ते ही जमकर बर्फ हो जाती थी उस समय भी मैंने शीतल जल से स्नान किया है। शीतल जल से मैंने तो सदा बल और आरोग्यता को ही प्राप्त किया है।"

जब योरुप और अमरीका जैसे शीतल देशों के निवासी शीतल जल के स्नान को इतना लाभदायक और महत्त्वपूर्ण समझते हैं, तब भारत समान उष्ण जलवायु वाले देशों में शीतल जल से स्नान करने के लाभ और महत्व को सभी सहज में ही समझ सकते हैं।

शीतल जल के स्नान से मनुष्य में स्वाभाविक पवित्रता और उच्च विचारों की जागृति होती है। कुत्सित वा गन्दे विचारों का सर्वनाश होता है। क्यों कि शीतल जल का स्नान शरीर ही नहीं,

मन को भी शुद्ध पवित्र और शान्त करता है। जिसका अन्तःकरण चतुष्टय और आत्मा पर भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार स्नान बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धि करता है, जो ब्रह्मचर्य के लिए अत्यन्त आश्यक है। इसीलिए महर्षि धन्वन्तरि जी ने—

"पापोपशमनं स्नानं"

शीतल जल का स्नान पापों का उपशमन (सर्वनाश) करता है ऐसा लिखा है। यह अनुभूत भी है। जब कामविकार किसी युवक को बहुत तंग करने लगे और किसी उपाय से भी शांत न हो तो ऐसे समय में शीतल जल का स्नान रामबाण के समान कार्य करता है। सिर पर शीतल जल पर्याप्त मात्रा में डालना चाहिए जिससे सिर भी सर्वथा शीतल हो जाए। इससे मस्तिष्क की उष्णता दूर होकर मन और शरीर भी शुद्ध, पवित्र और शांत हो जाते हैं और कामाग्नि वा पाप की भावना के ठहरने को स्थान कहां ? क्योंकि मलीन शरीर में मलीन मन और मलीन मन में काम-विकार (पाप) का निवास होता है। इस बात का तो स्नान करते समय सभी को सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जब स्नान करने के लिए बैठें तो सबसे प्रथम सिर पर ही जल डालें और इसे भिगोकर खूब ठण्डा करलें। कभी भूलकर भी पहले पैरों पर वा शरीर के नीचे के भागों पर स्नान करते समय जल न डालें, नहीं तो नीचे की सब उष्णता सिर में चढ़कर मस्तिष्क, स्मरणशक्ति और नेत्र-ज्योति को बहुत हानि पहुँचायेगी, और इससे काम-विकार जागृत हो प्रबल होते हैं। मन और स्वास्थ्य दोनों पर ही दुष्प्रभाव पड़ता है। इसलिए स्नान करते समय सबसे प्रथम सिरको भिगोयें और भलीभांति धोयें। इस छोटी सी भूल के कारण अज्ञानवश लोग अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। वैसे तो साधारण मनुष्यों में भी यह वात प्रचलित है कि सिर को सदैव शीतल (ठण्डा) और

पैरों को उष्ण (गर्म) रखना चाहिए किन्तु स्नान करते समय इस स्वास्थ्य के रहस्य को भूल जाते हैं। आंगल भाषा में भी यह लोकोक्ति इस प्रकार आती है:—

"Keep the head cool and the feet warm"

अर्थात् सिर ठण्डा और पैर उष्ण रखें। यदि पैरों को और शरीर के नीचे के अंगों को स्नान के समय पहले भिगोया वा धोया जावे और पीछे सिर और ऊपर के अंगों को भिगोयें, धोयें तो स्नान का जो उद्देश्य शरीर शुद्धि है, वह भी ठीक-ठीक नहीं होती। क्योंकि सिर अन्य अंगों को मैला वा गन्दा करता है, जिन्हें फिर धोना पड़ता है इसलिए सिर भिगोकर मुख आदि नीचे के अंगों को क्रमशः खूब भिगोयें और रगड़-रगड़कर भलीभांति धोयें। शरीर के प्रत्येक अंग को हाथों से खूब रगड़-रगड़कर शुद्ध कर डालें। साथ ही शरीर पर इच्छानुसार जल भी डालते रहें। बिना रगड़े शरीर पर जल डालने से मैल दूर नहीं होता। किन्तु आंख, मूत्रेन्द्रिय आदि कोमल अंगों को सावधानता से शुद्ध करना चाहिए, नहीं तो हानि होने की सम्भावना है। स्नान करते समय हाथ से रगड़ने से शरीर में जो उष्णता वा विद्युत् सी उत्पन्न होती है उससे शरीर में उत्साह, स्फूर्ति, साहस, बल, तेज वा कान्ति की वृद्धि होती है, और सभी शारीरिक रोगों की निवृत्ति होती है। इसलिए शरीर के प्रत्येक अवयव को भलीभांति रगड़ना चाहिए। इससे स्नान के साथ व्यायाम भी हो जाता है, और जिस अंग वा स्थान को नहीं रगड़ा जाता वह निर्बल और रोगी हो जाता है। स्नान के समय पेट का खूब घर्षण करना चाहिए जिससे प्रायः सभी उदर विकार समाप्त हो जाते हैं। पेट अपानवायु के निकलने से अत्यन्त कोमल हो जाता है। शौच भी खुलकर आता है और मनुष्य का

सारा शरीर सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी हो जाता है। इस प्रकार घर्षण स्नान से अर्थात् रगड़-रगड़कर नहाने से मनुष्य सारे दिन प्रसन्न और आनन्द में मग्न रहता है। जो स्नान नहीं करते अथवा शरीर को बिना रगड़े स्नान करते हैं उनको स्नान का पूरा लाभ नहीं पहुँचता, और ऐसे ही लोग सदा मलीन, आलसी, विषयी, रोगी, दुःखी, निरुत्साही तथा निस्तेज रहते हैं। इन्हें ब्रह्मचर्य पालन में सफलता नहीं मिलती इसलिए अल्पायु में ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। दीर्घ-जीवन और आनन्द की प्राप्ति इनके भाग्य में नहीं होती। ब्रह्मचारी को स्नान करते समय एक बात का और ध्यान रखना चाहिये कि जहां वह मस्तिष्क को खूब शीतल जल डालकर स्नान से पूर्व धोएं और शुद्ध करें, उसी समय नाभि के नीचे पर्याप्त शीतल जल की धारा और मूत्रेन्द्रिय तथा उसके आस-पास के स्थान को धोकर शुद्ध कर डालें। मूत्रेन्द्रिय को रगड़ें या मलें नहीं। इससे हानि हो सकती है। इस स्थान की शुद्धि आवश्यक है। स्नान करते समय हम अन्य सभी अंगों को तो शुद्ध कर लेते हैं किन्तु मूत्रेन्द्रिय को लज्जा वा प्रमाद के कारण छोड़ देते हैं। इसकी शुद्धि का हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए, यह एक कोमल अंग है। इसे तथा अण्डकोषों को तथा आस-पास के स्थान को प्रतिदिन स्नान के समय शुद्ध करना आवश्यक है। इनकी शुद्धि के अभाव में दाद, खुजली, स्वप्नदोष आदि रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु नाभि के नीचे जल डालने तथा मूत्रेन्द्रिय की शुद्धि और स्नान से ब्रह्मचर्य पालन में बड़ी सहायता मिलती है। स्नान के समय मूत्रेन्द्रिय स्नान भी यदि सुविधा हो तो प्रतिदिन अवश्य करें। जिसकी विधि और लाभ पहले लिख चुके हैं। काम-विकार शांत होते हैं और केवलमात्र इस क्रिया के करने से ही बहुत से रोगियों का स्वप्नदोष और धातु

प्रमेह दूर हो जाता है। १६ वर्ष की आयु के पीछे मूत्रेन्द्रिय के आस-पास के स्थान पर बाल उगते हैं इनको भी मास में दो बार कैंची से काट डालना चाहिये नहीं तो हानि होने की सम्भावना है। इस स्थान की शुद्धि करने में भी यह बाधक हैं। आजकल फैशन के पागलपन में लोग शिर पर बड़े-बड़े बाल रखते हैं। इससे शिर में धूल आदि मैल जम जाता है और शिर का स्नान भलीभांति नहीं होता। ऐसे लोगों के शिर में मैल जमा ही रहता है। बिना शिर की शुद्धि के स्नान ही क्या है? इस लिए कहा है— 'न च स्नायाद् बिना शिरः' अर्थात् बिना शिर का स्नान किये वा भिगोये स्नान कभी नहीं करना चाहिये।

इसलिये शिर का स्नान सर्वप्रथम और अवश्य होना चाहिये। बाल इस स्नान में बाधक हैं। भारत जैसे उष्णप्रदेश और विशेष-तया उष्णकाल में बाल अत्यन्त हानिकारक हैं। इनसे मस्तिष्क, बुद्धि और आंखें खराब हो जाती हैं। इसलिये इन बालों की बला से बचे रहें जिससे स्नान का लाभ शरीर और नेत्रों को पूर्णतया पहुँच सके। कई लोग बालों को तथा शरीर को शुद्ध करने के लिये साबुन मलकर उष्ण जल से नहाते हैं। पहले लिखा जाचुका है कि उष्ण जल ब्रह्मचर्य की दृष्टि से तो अत्यन्त हानिकारक है ही, इसके अतिरिक्त उष्ण जल के स्नान से और भी अनेक हानियाँ होती हैं। शिर पर उष्ण जल के डालने के विषय में सुश्रुत में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं:—

'उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षुषः सदा।'

अर्थात् उष्ण जल-शिर पर डालकर स्नान करना नेत्रों को सदा हानिकारक है। और शीतल जल के विषय में वे लिखते हैं:—

'शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशेत्।'

अर्थात् शीतल जल शिर पर डालकर स्नान करना नेत्रों को लाभदायक है।

एक वैद्य एक स्थान पर लिखते हैं:—

'शीतल जल के स्नान से उष्णवात, सोजाक, मृगी, उन्माद, रक्तपित्त, स्वप्नदोष, प्रमेह और मूर्च्छा आदि रोगों में बड़ा उपकार होता है।'

आजकल जब कि धातुक्षीणता से ६० प्रतिशत मनुष्यों की प्रकृति वा स्वभाव उष्ण रहता है इस दृष्टि से भी सभी को शीतल जल से स्नान करना लाभदायक है। सन्देह होता है, क्या रोगी भी उष्ण जल से न नहाये ? प्रथम तो ब्रह्मचारी रोगी होता ही नहीं। यदि किसी भूल से हो भी जाये और स्नान करने की इच्छा हो तो उसे शीतल जल से ही स्नान करना चाहिये। रुग्ण अवस्था में जो लोग भोजन करते हुए नहीं डरते, पता नहीं वे स्नान से क्यों डरते हैं ? और रोगी तो दीन दया का पात्र ही होता है। इसलिये मनु जी ने 'नातुरः स्नानमाचरेत्' (मनु०अ० ४ श्लोक १२६) रोगी स्नान न करे। यह आज्ञा देकर रोगी पर दया दृष्टि की है। दौर्भाग्यवश रुग्ण अवस्था में किसी को उष्ण जल से स्नान करना ही पड़े तो शिर, मसाना (मूत्रेन्द्रिय) पर तो शीतल जल ही डालना चाहिये। इन दोनों स्थानों पर तो उष्ण जल का कभी प्रयोग न करें। इसकी हानियां पहले ही बताई जा चुकी हैं।

स्नान का स्थान

स्नान करने के लिये भी सर्वोत्तम स्थान नदी का माना जाता है। तडाग (तलाब) और कुओं पर भी स्नान करते हैं। कहीं भी नहाओ, जल शुद्ध होना चाहिये। मैले सड़े हुये जल में, चाहे वह नदी, कूप, तडाग किसी का भी हो, उसमें स्नान करना रोग मोल

लेना है। इसीलिये वर्षाकाल में जल गन्दा होने के कारण ही नदी में स्नान करने का निषेध किया है। चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय २७ श्लोक २१० में लिखा है:—

वसुधाकीटसर्पाखुमलसंदूषितोदकाः ।
वर्षाजलवहा नद्यः सर्वदोषसमीरणाः ॥

मिट्टी, कीड़े, सांप, चूहे आदि तथा अन्य मलों से दूषित जल वर्षाकाल में नदियों में मिल बहने लग जाता है। इसलिये नदियों के जल दूषित होकर सब (तीनों) दोषों को बढ़ानेवाले होते हैं।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता सूत्रस्थान ४५वें अध्याय में लिखा है:-

कीटमूत्रपुरीषाण्डशवकोथप्रदूषितम् ।
तृणपर्णोत्करयुतं कलुषं विषसंयुतम् ॥९॥
योवगाहेत वर्षासु पिबेद्वापि नवं जलम् ।
स बाह्याभ्यन्तरान् रोगान् प्राप्नुयात् क्षिप्रमेव तु ॥१०॥

कीड़े, मूत्र, विष्ठा, अण्डे, शव (लाश), कोथ (दुर्गन्धित पदार्थ), तृण से घास पात, कूड़ा-कर्कट वर्षा के जल में मिले रहते हैं। वर्षा का नवीन जल मलीन और विषयुक्त होता है। जो मनुष्य उस जल में स्नान करता है वा उस नवीन जल का पान करता है उसके शरीर में बाहर होनेवाले (फोड़े-फुन्सी नहरुवा आदि चमड़े के) रोग हो जाते हैं तथा अन्दर के भीतरी रोग (उदर विकार अजीर्ण ज्वर आदि) तत्काल हो जाते हैं।

किन्तु ऋषियों की इस हितकारी बात पर भी पौराणिक अन्धविश्वास में फंसे हुये लोग ध्यान नहीं देते और गङ्गा यमुना को पवित्र पापनाशिनी और मोक्षदायिनी समझकर वर्षाकाल में इनके गन्दे और सड़े हुये जल में डूबते रहते हैं और इसीलिये दाद,

खाज आदि चर्मरोगों से सड़ते हुये दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कलकत्ता, दिल्ली आदि नगरों के निकट सारे नगर का मल-मूत्र बहकर प्रतिदिन गङ्गा और यमुना में मिलता रहता है वहां भी लोग उनमें स्नान करके अपने आपको पुण्य और यश का भागी समझते हैं। किन्तु जिस प्रकार मैले जल के पीने से रोग होते हैं उसी प्रकार मलीन जल का स्नान भी अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। अतः बुद्धिमान् लोगों को चाहिये कि नदी, तडाग कूप वा बावड़ी जहां पर स्नान करें, शुद्ध शीतल जल से ही स्नान करें। वैसे शुद्ध जलवाले नदी वा सरोवरों में स्नान करने से ब्रह्मचारी को वड़ा लाभ होता है। स्नान का स्नान और व्यायाम का व्यायाम। क्योंकि तैरने से शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है। फुफ्फुस शुद्ध और बलवान् होते हैं। छाती चौड़ी और सम्पूर्ण शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, सुदृढ़, निरोग, स्वस्थ और शक्तिशाली बन जाता है। मनुष्य में स्फूर्ति, उत्साह, कान्ति और तेज की वृद्धि होती है। नियमपूर्वक तैरने से चक्षु और वीर्य सम्बन्धी सभी रोग दूर हो जाते हैं। तैरने की बड़ी अच्छी विद्या है। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से तो हितकारी है ही तथा समय पड़ने पर दूसरों की प्राणरक्षा के लिये भी खूब काम आती है। इसलिये ब्रह्मचारी को तैरना अवश्य सीख लेना चाहिये। चक्षुःस्नान और मूत्रेन्द्रिय स्नान के लिये भी बड़ी सुविधा है और ये दोनों ब्रह्मचारी के लिये अत्यन्त आवश्यक और हितकर हैं। यदि नदी और सरोवर सुलभ न हों तो कूप पर ही पर्याप्त, शुद्ध, शीतल जल से खूब रगड़-रगड़ कर स्नान करना चाहिये। कूप में से जल निकालने के समय आलस्य न करें। इससे भी व्यायाम होता है। निकालने के परिश्रम के भय से स्नान के समय जल के बर्तने में लोभ करना मूर्खता है। स्नान के समय वा स्नान के पश्चात् शरीर

को खद्दर के वस्त्र से खूब रगड़-रगड़ कर मलना चाहिए। स्नान-काल में तो गीले अङ्गोछे से रगड़ें, परन्तु स्नान कर चुकने पर सूखा अङ्गोछा ही ठीक है।

इस क्रिया को चरक में परिमार्जन के नाम से लिखा है और इसके अनेक लाभ बतलाये हैं:—

दौर्गन्ध्यं गौरवं तन्द्रां कण्डूं मलमरोचकम्।
स्वेदबीभत्सतां हन्ति शरीरपरिमार्जनम्॥
(सूत्रस्थान अध्याय ५ श्लोक ९०)

स्नानादि के समय शरीर का परिमार्जन वस्त्र आदि के द्वारा रगड़-रगड़कर मैल उतारने की क्रिया करने से दुर्गन्ध, भारीपन, तन्द्रा (आलस्य), कण्डू (खुजली), मल (सब प्रकार की मलीनता), अरुचि (भोजन में रुचि न होना) और स्वेद (पसीने) द्वारा बीभत्पता (कुरूपता) नष्ट होती है। जो लोग स्नान के पीछे गीले शरीर को शुष्क अङ्गोछे से रगड़-रगड़कर नहीं पोंछते उनको उपर्युक्त दाद, खुजली आदि दोष वा रोग लग जाते हैं। शरीर को अङ्गोछे से पोंछे बिना स्नान से विशेष लाभ नहीं हो सकता। सूखे और मोटे अङ्गोछे से शरीर को पोंछने से स्नान से फूला हुआ शरीर का मैल सहज में ही छूट जाता है और त्वचा अत्यन्त शुद्ध होकर इस पर एक विशेष कान्ति और तेज आजाता है। शरीर को इस प्रकार मोटे खुरदरे वस्त्र से पोंछने से शरीर के समस्त अवयवों का व्यायाम भी हो जाता है। जितनी शुद्धि वा लाभ इस प्रकार वस्त्र पोंछने से होता है उतना अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता। आजकल के पढ़े लिखे बाबू लोग स्नान के समय साबुन का प्रयोग करते हैं वे घर से धन व्यर्थ में खोकर साथ ही अनेक हानियां भी उठाते हैं।

इसीलिये राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे विचारशील नेता स्नान के लिये साबुन का प्रयोग नहीं करते थे।

स्नान के विषय में कुछ आवश्यक बातें

वैसे तो स्नान के समय शरीर के सभी अङ्गों को (मूत्रेन्द्रिय को छोड़कर) रगड़-रगड़कर घर्षण स्नान करना ब्रह्मचारी के लिये आवश्यक है किन्तु पांवों की सभी अंगुलियों के बीच के भाग को हाथ के अंगूठों से एक दो मिनट तक रगड़ना ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए लाभदायक है। क्योंकि हमारे पांव के अंगूठों की मोटी नसों का सम्बन्ध मूत्रेन्द्रिय से है। इन नसों के दबने वा मलने से मूत्रेन्द्रिय में अनावश्यक उत्तेजना नहीं होती। इसी लाभ को दृष्टि में रखते हुये ब्रह्मचर्यप्रेमी सज्जन खूंटीवाली खड़ाऊं का प्रयोग करते हैं।

स्नान सदा भोजन से पूर्व ही करना चाहिये। क्योंकि यह पहले ही लिखा जा चुका है कि स्नान के पश्चात् भूख भी खुलकर लगती है। किन्तु स्नान के तुरन्त ही पश्चात् पित्त आदि दूषित होने और पाचनक्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस लोकोक्ति "सौ काम छोड़कर खा, हजार काम छोड़कर नहा" से यही सिद्ध होता है कि भोजन से स्नान दशगुणा आवश्यक है। इसलिए भोजन से पूर्व स्नान करना चाहिये। किसी संस्कृत के कवि ने इस भाव को कितना अच्छा प्रकट किया है:—

'शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।'

सौ काम छोड़कर भोजन करे, हजार काम छोड़कर स्नान करे। मनुष्य खाकर पछताता है, नहाकर नहीं पछताता। स्नान से तो तुरन्त ही उत्साह, स्फूर्ति, पवित्रता आदि गुणों की प्राप्ति होती है और सात्विक वृत्ति का उदय होता है। भोजन के पश्चात् मनुष्य

को आलस्य और तन्द्रा दबा लेती है। एक प्रकार से कुछ अंश में तमोगुण छा जाता है।

'न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा' ।। मनु० अध्याय ४ श्लोक १२९ ।।

भोजन करके स्नान न करे, मनु जी महाराज की आज्ञा के विरुद्ध भोजन करने के पश्चात् स्नान करने से अनेक उदरविकार होजाते हैं। यदि किसी विशेष कारण से भोजन के पीछे स्नान करना ही पड़े तो भोजन के कई घण्टे पश्चात् करना चाहिये। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है "भोजन से पूर्व स्नान अवश्य करना" (सत्यार्थप्रकाश, ३ समुल्लास)।

स्नान करते समय शरीर पर "न वासोभिः सह स्नानमाचरेत्"। मनु० अ० ४ श्लोक १२९ "वस्त्रों के साथ स्नान न करे" मनु जी की इस आज्ञा के अनुसार वस्त्र नहीं रखने चाहियें। वस्त्र पहने हुए स्नान भलीभांति नहीं हो सकता। सदैव वस्त्र पहने रहने से मनुष्य का शरीर निर्बल हो जाता है। अतः प्रातःकाल की वायु जब खुले शरीर पर लगती है वह संजीवनी बूंटी के समान शक्ति प्रदान करती है और खुले शरीर स्नान करने से शरीर की सहनशक्ति बढ़ती है। फिर शीत और उष्णता के प्रभाव से शरीर की कोई हानि नहीं होती किन्तु लाभ ही होता है। केवल एक लङ्गोट पहन कर नहाना ही भारतीयों की सर्वश्रेष्ठ प्राचीन रीति है। इसमें सारे शरीर का घर्षण करने (रगड़ने) की पूरी सुविधा रहती है। पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे लोग सर्वथा नंगे होकर भी स्नान करते हैं। किन्तु यह असभ्यता और जगलीपन है और भारतीय सभ्यता के सर्वथा विरुद्ध है। मनुस्मृति में लिखा है—

'न नग्नः स्नानमाचरेत्' (मनु० अ० ४ श्लोक ४४)

अर्थात् नङ्गा होकर स्नान न करे।

कौटलीय अर्थशास्त्र में मुनिवर चाणक्य लिखते हैं—

"न नग्नो जलं प्रविशेत्" (कौटलीय अर्थशास्त्र सूत्र ४०७)

अर्थात् नंगा होकर जल में स्नान न करे।

इसलिए हमारे ऋषियों ने इसका सर्वथा निषेध किया है।

नदी, तडाग आदि का स्नान अच्छा है किन्तु "अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तैरना न जाने तो डूब भी सकता है।" (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)। यह वाक्य महर्षि दयानन्द जी का हमारे लिए कितना अमूल्य है।

मनु जी महाराज का भी ऐसा ही आदेश है—

"नाविज्ञाते जलाशये" (मनु० अ० ४ श्लोक १२९)।

अविज्ञात जलाशय (तालाब आदि) में प्रविष्ट होके स्नानादि न करे। अन्यथा हानि ही होने की सम्भावना है।

प्राचीन ऋषियों ने शुद्ध जलपान और इसी के द्वारा स्नान करने पर बड़ा बल दिया है। सामान्य लोग कौनसा जल शुद्ध, पवित्र वा गुणकारक है, इसका भलीभांति ज्ञान नहीं रखते।

चरक संहिता-सूत्र स्थान के २७वें अध्याय में लिखा है—

जलमेकविधं सर्वं पतत्यैन्द्रं नभस्तलात्।
यत्पतत्पतितं चैव देशकालावपेक्षते ॥१९३॥

आकाश से मेघ के सब जल एकसे ही गिरते हैं, किन्तु वे गिरते हुये तथा गिर कर देश और काल की अपेक्षा रखते हैं। अन्तरिक्ष से जल जो वरसता है वह अत्यन्त स्वच्छ होता है किन्तु मार्ग में धूली गैस आदि मल अतिशीत और उष्णता आदि के संसर्ग से रूप-रस आदि गुणों तथा हित-अहित में भिन्नता आजाती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर गिर कर वहां वहां की मिट्टी वा मिट्टी में स्थित धातु, क्षार आदि के संसर्ग से उनमें भिन्नता आजाती है।

इसके विषय में सुश्रुतसंहिता सूत्र के स्थान ४५वें अध्याय में खूब खोलकर लिखा है—

जिस अन्तरिक्ष जल में धूल आदि नहीं मिलती और शुद्धरूप में नीचे गिरता है उसे अच्छे पात्र में औटा कर कितने ही वर्ष रखें, वह गंगाजल के समान न सड़ता है न बिगड़ता है। इसलिए इस सर्वोत्तम जल का नाम सुश्रुत ने "गाङ्ग" रखा है और जिसमें धूल आदि मल तथा अन्य हानिकर गैसें मिल जाती हैं अतः समुद्र के समान अत्यन्त अशुद्ध होने से इसको सुश्रुत ने 'सामुद्र' नाम दिया है।

शुद्धजल के चरक संहिता में छः गुण दिये हैं —

शीतं शुचि शिवं मृष्टं विमलं लघु षड्गुणम्।
प्रकृत्या दिव्यमुदकं भ्रष्टं पात्रमपेक्षते ।।

(सूत्रस्थान अध्याय २७ श्लोक १६५)

अन्तरिक्ष जल के स्वाभाविक गुण (१) शीतल (२) पवित्र (३) कल्याणकारक (४) धूलि आदि से रहित वा आस्वाद में प्रिय (५) निर्मल (६) लघु (हल्का) ये छः हैं। गिरने पर पात्र की अपेक्षा से यह दोषों को धारण करता है और जैसे स्थान पर गिरता है वैसे ही गुण इसमें आजाते हैं। इसलिये स्नान के समय यदि वर्षा होने लगे तो ब्रह्मचारी को वर्षा में स्नान करके खूब आनन्द लूटना चाहिये। जो अन्तरिक्ष से गिरते समय वर्षा का जल स्वच्छ पात्र में इकट्ठा किया जाता है। धीर मेधावी लोग उसे 'ऐन्द्र' अर्थात् इन्द्र का जल कहते हैं और उसका श्रेष्ठपुरुष वा राजा लोग पान करते हैं। यह आश्विन के महीने में ग्रहण किया जाता है। वर्षाजल के सेवन का विधान सुकुमार अर्थात् ब्रह्मचारियों के लिये चरक और सुश्रुत ने विशेषतया किया है। वर्षाजल भी शरद् ऋतु का सर्वश्रेष्ठ होता है।

इसके विषय में लिखा है:—

राजभिः राजमात्रैश्च सुकुमारैश्च मानवैः।
संगृहीताः शरद्यापः प्रयोक्तव्याः विशेषतः ॥

(चरक संहिता सूत्रस्थान। अध्याय २७ श्लोक २०५)

राजाओं, धनी-मानी राजपुरुषों और सुकुमार अर्थात् ब्रह्मचारियों को शरद् ऋतु में विधिपूर्वक इकट्ठे किये हुये जलों का विशेषतया प्रयोग करना चाहिये।

चरक में शरद् ऋतु के जल के विषय में लिखा है:—

तनु लघ्वनभिष्यन्दि प्रायः शरदि वर्षति ।
तत्तु ये सुकुमाराः स्युः स्निग्धभूयिष्ठभोजनाः ।
तेषां भक्ष्ये च भोज्ये च लेह्ये पेये च शस्यते ॥

(सूत्रस्थान। अध्याय २७ श्लोक २००-२०१)

शरद् ऋतु में जो जल बरसता है पतला और हल्का होता है। वह अभिष्यन्द वा क्लेश करनेवाला नहीं होता। वह जल सुकुमार ब्रह्मचारियों के लिए तथा अत्यधिक स्निग्ध (घृत आदि) भोजन करने वाले पुरुषों के भक्ष्य भोज्य लेह्य तथा पेय चारों प्रकार के आहार में प्रशस्त है अर्थात् इसका प्रयोग स्नान, खान-पान आदि सभी आवश्यक कार्यों में श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये ब्रह्मचर्य-प्रेमियों को वर्षाजल के सदुपयोग से भलीभांति लाभ उठाना चाहिये।

संध्या और ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचारी के नित्य कर्मों में संध्या वा ईश्वरभक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसलिये महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं:—

"प्रथम शरीर शुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त कर्म करके संध्योपासन का आरम्भ करें।" यही सब वेद-शास्त्रों की आज्ञा है। वैसे तो

स्नान करने के पश्चात् ब्रह्मचारी ही क्या प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्यून से न्यून एक घण्टा प्रतिदिन संध्योपासना में लगावे। कितने दुःख का विषय है कि सांसारिक सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति के के लिये तो दिन-रात एक कर दिया जाये और परमात्मा का चिंतन करने के समय, समय न मिलने का मिस (बहाना) बनाया जावे। इस लोक और परलोक दोनों में सुख और शांति चाहनेवाले मनुष्यों को जीवन के इस सर्वप्रथम कर्त्तव्य की अर्थात् संध्या की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए और प्रातः सायं दोनों समय बहुत श्रद्धापूर्वक संध्योपासना करनी चाहिए। ब्रह्मचारी और संध्या का सम्बन्ध तो इस प्रकार का है जैसे प्राण और शरीर का। ब्रह्मचारी कौन है ? वेद भगवान् इसका उत्तर देता है। "ब्रह्मचारीष्णंश्चरित रोदसी उभे" (अथर्ववेद ११ कां० सूक्त ५ मन्त्र १) जो ब्रह्म को वार-वार चाहता हुआ खोजता हुआ दोनों लोकों में विचरता है वही ब्रह्मचारी है क्योंकि ब्रह्मचारी ब्रह्म की निरन्तर खोज करता हुआ वन में, पर्वत में, इस लोक में, परलोक में, द्यावा में, पृथ्वी में, स्थूल में, सूक्ष्म में, आकाश में, पाताल में, सर्वत्र सारे ही संसार में विचरता है। वह मारा-मारा फिरता है। इसको प्राप्त किये बिना उसको शांति कहां ? इसलिये "ब्रह्म इष्णन् चरतीति ब्रह्मचारी" ब्रह्म की खोज वा प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व लुटा देता है।

किसी सच्चे ब्रह्मचारी गुरु की शिक्षा, सत्सङ्ग, पथप्रदर्शन और निरन्तर निरीक्षण के बिना ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना असम्भव है। क्योंकि अनुभवी सच्चा ब्रह्मचारी ही किसी को ब्रह्मचारी बना सकता है। इसलिए वेद ने "आचार्यो ब्रह्मचारी" ब्रह्मचारी ही आचार्य हो सकता है इस सत्य को प्रकट किया है। आचार्य की ब्रह्मचर्य रूपी अग्नि से ही ब्रह्मचारी में भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। जैसे "दीपाद्दीपमिवान्तरम्"

जलते हुए दीपक से दूसरा दीपक जलाया जाता है। बुझा हुआ दीपक दूसरे दीपक को जलाने में असमर्थ है। इसलिये तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में कहा है कि "आचार्यः पूर्वरूपमन्तेवासी उत्तररूपम्" अर्थात् आचार्य पूर्वरूप है और ब्रह्मचारी उसका उत्तररूप है। निष्कर्ष यह है कि जैसा आचार्य होता है वैसा ही ब्रह्मचारी भी होता है। मानो आचार्य ही स्वयम् ब्रह्मचारी में घुसकर अपना रूप प्रकट करता है।

सब गुरुओं का गुरु और आचार्यों का आचार्य वह परम ब्रह्मचारी परमेश्वर है। इसमें योगदर्शन का प्रमाण है। "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" (समाधि० सू० २६) वह ईश्वर पूर्व (आदि) गुरुओं का भी गुरु है, काल सीमा उसके लिए नहीं है। जैसे वह इस सर्ग का भी आदिगुरु है ऐसे ही अतीत और अनागत सर्गों का आदिगुरु अर्थात् गुरुओं का भी गुरु है। "तस्य वाचकः प्रणवः" (योग० समाधि० सूत्र० २७) उस आदि गुरु परमात्मा का नाम 'ओ३म्' है। इस नाम से प्रभु का नित्य सम्बन्ध है अर्थात् सभी सर्गों में यह नाम उसका स्थिर रहता है। इसलिए उस परम ब्रह्मचारी 'ओ३म्' की शरण में आये विना और उसका निरन्तर सत्सङ्ग किये विना कोई कैसे ब्रह्मचारी बन सकता है ? विषयभोगों का चक्र बड़ा प्रबल है। इनकी कीचड़ में बिना फंसे निकलना बहुत कठिन है। विषयों से सदैव दूर रहनेवाले सच्चे ब्रह्मचारी गुरु की सहायता से ब्रह्मचारी इस दुर्गम मार्ग को पार कर सकता है और ऐसा सच्चा त्यागी और परम वैरागी गुरु तो केवलमात्र 'ओ३म्' है जो परम ऐश्वर्य का स्वामी होता हुआ भी त्रिकाल में भी विषय भोगों का स्पर्श तक नहीं करता। वह सर्वथा निष्काम है। इस परब्रह्म के ब्रह्मचर्य के सहारे यह क्षणभंगुर संसार टिका हुआ है

नहीं तो कभी का नष्ट होगया होता। इसलिए इस परम सहायक की सहायता और आश्रय की ब्रह्मचारी को आवश्यकता है। जिस प्रकार बालक माता की गोद में बैठकर सर्वथा निश्चिन्त और आनन्दमग्न हो जाता है इसी प्रकार इस जगज्जननी का संरक्षण ब्रह्मचारी को सब विघ्न बाधाओं से बचा देता है।

"परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहायता से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो जाते हैं। जितेन्द्रिय (ब्रह्मचारी) बनने के अभिलाषी को रात दिन प्रणव (ओ३म्) का जप करना चाहिये। जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीतनिवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहियें।"

महर्षि दयानन्द जी के इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य पालन जैसे महाकठिन कार्य की सिद्धि के लिये ईश्वरोपासना वा सन्ध्या की कितनी आवश्यकता है। क्योंकि सन्ध्या वा ईश्वरोपासना से ही ब्रह्मचारी का सम्बन्ध सीधा परम-ब्रह्मचारी परमेश्वर से जुड़ जाता है और जब ब्रह्मचरी ब्रह्मचर्य की साधना के लिए घोर तपस्या करता है तो ऐसे पुरुषार्थी ब्रह्मचारी का सहाय परमेश्वर भी करता है। करे भी क्यों नहीं ? जबकि ब्रह्मचारी प्रभु का सब से अधिक प्रिय पुत्र वा शिष्य ठहरा।

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।
(प्रश्नोपनिषद् १।१५।।

यह प्रश्नोपनिषद् का वाक्य इस में प्रमाण है। जो ब्रह्मचर्य रूपी तप की भट्टी में अपने आप को तपाते हैं उन्हीं का ब्रह्मलोक पर अधिकार है। पूर्ण ब्रह्मचर्य ही ब्रह्मप्राप्ति का एकमात्र साधन

है। विषयी लम्पट लोग भला ईश्वर को क्या प्राप्त कर सकते हैं। ब्रह्मप्राप्ति तो दूर रही ब्रह्मचर्य के बिना ईश्वरभक्ति भी पूर्ण नहीं हो सकती और ईश्वरभक्ति के बिना ब्रह्मचर्य सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वरभक्ति और ब्रह्मचर्य, सामान्य मनुष्य को पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं किन्तु यथार्थ में हैं एक ही।

इसलिए ही वेद ने 'ब्रह्मचारीष्णान् चरति' ब्रह्म की खोज करनेवाले को ही ब्रह्मचारी कहा है। इसलिये पंचयज्ञों में से ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना, संध्योपासना करना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना और दूसरे देवयज्ञ में केवल अग्निहोत्र का ही करना ब्रह्मचारी के लिये ऋषियों ने आवश्यक नित्य-कर्म ठहराया है। इसलिए संस्कारविधि के वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के नित्यकर्मों के विषय में यह आदेश आया है:— "प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसंध्योपासनेश्वर-स्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान् नित्यमाचर। (गोभिल गृह्यसूत्र)

"रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, संध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का नित्य आचरण किया कर।"

इसलिए स्नान के पश्चात् ब्रह्मचारी को संध्योपासना करनी चाहिए। संध्या का अर्थ पञ्चमहायज्ञविधि में इस प्रकार लिखा है:—

संध्या शब्द का अर्थ

"संध्यायन्ति संध्यायते वा परं ब्रह्म यस्यां सा संध्या।"

भलीभांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाए परमेश्वर का जिस में वह संध्या है।

संध्या का समय

"तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभ योस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यै-

रवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्याः ।" रात और दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रर्थना उपासना, करनी चाहिये ।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—

"सन्ध्या अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही समय में करें । दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं ।" मनु जी का भी इसमें प्रमाण हैः—

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥
(मनु० अ० ४ श्लोक ९३)

फिर उठकर दिशा जङ्गल होकर पवित्र हो एकाग्रचित्त से प्रातः सन्ध्या में बहुत काल पर्यन्त जप करता रहे और सायं सन्ध्या को भी अपने काल में देर तक करे ।

पहले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि राग द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी आवश्यक है । शरीरशुद्धि के साथ अन्तः करण की शुद्धि भी अवश्य करें । क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन है । जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य रीड में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे । जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है । नित्य-प्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है । ईश्वरभक्ति का यह फल तो पृथक् होगा ही 'परन्तु आत्मा का बल

इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटीसी बात है ?" इसलिए "जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान करें।" यदि अधिक समय हो तो गायत्री मन्त्र वा 'ओ३म्' इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्य प्रति जाप किया करें। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवें। मनु जी महाराज का इस विषय में यह आदेश है:—

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधियीत गत्वारण्यं समाहितः ॥

(मनु० अध्याय २ श्लोक १०४)

स्वामी दयानन्द जी महाराज इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं:-

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में ईश्वरभक्ति पर बड़ा बल दिया है। "ईश्वरप्रणिधानाद्वा" (समाधिपाद सूत्र २३) ईश्वर के प्रणिधान (भक्ति) से (निकटतम) समाधि होती है। अर्थात् जब मनुष्य अनन्यचित्त होकर ईश्वर की संध्योपासना में तत्पर होता है तब ईश्वर अपने भक्त की इस भक्ति से प्रसन्न होकर कृपादृष्टि डालते हैं, जिससे भक्त योगी की समाधि सिद्ध हो जाती है।

संध्या में मन कैसे लगे ?

संध्या करनेवाले लोग प्रायः सभी यह शङ्का करते रहते हैं

कि संध्या के समय संध्या में मन नहीं लगता। इसका मुख्य कारण तो यही है कि लोग संध्या के मन्त्रों का अर्थ याद नहीं करते। महर्षि पतञ्जलि के इस आदेश को वे भूल जाते हैं:—

"तज्जपस्तदर्थभावनम्।" (योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २८)

ओ३म् का जप और उसके अर्थ का चिन्तन करना ही ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की भक्ति है। ओ३म् का जप उसके अर्थ के चिन्तन के साथ जो करता है उसका चित्त एकाग्र हो जाता है।

आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी इस प्रकार के जप करने के लिए बड़ा बल देते हैं। उन्होंने एक स्थान पर कहा है:—

"उसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये।"

वे ब्रह्मचारी के लिए रात-दिन प्रणव का जप करना ब्रह्मचर्य पालन का मुख्य साधन मानते हैं। उनके जीवन में इस प्रकार आता है।

"रात को यदि जप करते हुये आलस्य बहुत बढ़ जाये तो दो घण्टे गाढ़ निद्रा लेकर उठ बैठे और पूर्ववत् प्रणव पवित्र का जप करना आरम्भ कर दे।"

उनका अपना जीवन भी इसका प्रतीक वा प्रत्यक्ष उदाहरण है। ४६ वर्ष की आयु तक तो ऋषिवर का सारा जीवन योगाभ्यास, ईश्वर भजन और तपश्चर्या में बीता। वे रात-दिन ईश्वर के ध्यान में ही मग्न रहते थे। इसी ईशभक्ति के कारण प्रभु ने उनकी आत्मा में एक ऐसी अद्भुत शक्ति और बल का सञ्चार किया जिससे थोड़ेसे दस वर्ष के समय में कुमार्ग पर चलते हुए संसार को ही पलट डाला और सारे संसार को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। वे अपने व्याख्यानों में इन वाक्यों को बार-बार कहा करते थे— "जब कोई

जन अपने सच्चे मन स, अपने आत्मा से, अपने प्राण से और सारे सामर्थ्य से परमेश्वर का भजन करता है तब वह कृपामय परमात्मा उसको अपने आनन्द में निमग्न कर देता है। जैसे छोटा बालक घरकी छत पर अथवा नीचे से अपने माता-पिता के पास जाना चाहता है तो उसके माता-पिता इस भय से कि हमारे पुत्र को इधर-उधर गिर पड़ने से कष्ट न हो, अपने सहस्रों कामों को छोड़ दौड़कर उसे गोद में उठा लेते हैं, वैसे ही परम कृपानिधि परमात्मा की ओर यदि कोई सच्चे आत्मभाव से चलता है तब वह भी अपने अनन्त शक्तिमय हाथों से उस जीव को उठाकर सदा के लिए अपनी गोद में रख लेता है। फिर उसको किसी प्रकार का कष्ट (क्लेश) नहीं होने देता और वह जीव सदा आनन्द में ही रहता है। परमात्मा माता-पिता की भांति अपने भक्तों को सदा सुख-सम्पन्न करने की ही कृपा करता है।" उनकी इन वाक्यों पर अटल श्रद्धा और ध्रुव धारणा थी।

जिन्होंने उनके दर्शन किये हैं वे बताते हैं कि जब ऋषिराज ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्र उच्चारण करते थे तब प्रेमरस का एक सागरसा उमड़ पड़ता था। उन के शब्द सजीव होते थे। वाक्यों में भक्तिभाव ओत-प्रोत रहता था। उनका एक-एक वचन श्रोताओं के अन्तःकरण को स्पर्श करता था। उस समय उस अपूर्व भक्तिरस के प्रवाह में लोग ऐसे डूब जाते थे कि उनको देश काल तक का भी ज्ञान न रहता था। वे ईश-भक्ति में लीन हो जाते थे। उपदेश के आरम्भ में ऋषिवर मधुर स्वर में ओ३म् का नाद सुनाया करते थे, तो वह भी एक मोहन मन्त्र बन जाया करता था। एक बार राव युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर ऋषिवर रिवाड़ी पधारे और अपने व्याख्यान में एक दिन ऐसे मीठे स्वर से सामगान किया कि लोगों के चञ्चल चित्त भी तुरन्त एकाग्र होगए और सब

श्रोताओं की समाधि लग गई। ऐसे वृद्ध पुरुष जो उस समय उनके विरोधी थे उन पर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि आज तक वे उनकी प्रशंसा के गीत गाते नहीं थकते। जब उन्हें ऋषिवर के सामगान का स्मरण आजाता है तब वे आज भी गद्‌गद् होकर झूमने लगते हैं और उन्हें रोमाञ्च हो जाता है।

कुछ वर्ष हुए ऐसे वृद्ध के रिवाड़ी में मैंने स्वयं दर्शन किए और उन्होंने महर्षि की ऐसी अनेक घटनायें मुझे सुनाईं। उनकी प्रार्थनायें भक्ति और प्रेम-रस से कैसी परिपूरित होती थीं। नीचे लिखी प्रार्थना से इस पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है:—

"हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणाधार, प्राणजीवन! आपके बिना मेरा सहायक (दूसरा) कोई भी नहीं है। मेरे ईश्वर! मैं अत्यन्त दीनभाव से यह वर मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं।

"आप आश्चर्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यस्वरूप और सर्वोत्तम हो। न कोई आपके समान है और न कोई आपसे महान् है। हे सर्वज्ञ! आप ही स्तुति करने योग्य हो। सत्पुरुषों के प्रतिपालक आप ही हो। अपने भक्तों को परमानन्द प्रदान करना आपका सत्यव्रत है। आप देवों के भी देव हो। आपके अनुग्रह से हम परस्पर प्रेमपूर्वक रहें, सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, आप ही को पिता-माता बन्धु, राजा मानें, स्वामी और सहायक समझें। आप ही को सुख-दाता, सुहृद् और परम गुरु जानें। आपके तुल्य तथा आपसे अधिक किसी को कभी भी स्वीकार न करें। क्षणमात्र के लिए भी आपको न भूलें। हे करुणामय! जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन कीजिए।"

उन्होंने अपनी जीवन यात्रा समाप्त करते समय जो प्रार्थना की थी वह उनकी ईश्वरभक्ति का और प्रभु प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है। वैसे तो स्वामी जी महाराज को पापियों ने १६ बार विष दिया था किन्तु वेश्या के षड्यन्त्र से जोधपुर में अन्तिम बार भयंकर हाला हल विष दिया गया और वह सारे शरीर में रोम-रोम से फूटकर निकलने लगा। उनकी इस भयंकर अवस्था को देखकर डाक्टरों ने कहा—"यदि ऐसा भयंकर विष किसी और मनुष्य को दिया जाता तो वह पांच मिनट में ही मर जाता।" जोधपुर महाराज का डाक्टर अलीमर्दान खां जो अत्यन्त नीच प्रकृति का था, वह भी औषध के स्थान पर विष ही देता रहा। इस भयंकर विष के प्रभाव से प्रति-दिन सौ-सौ दस्त आने लगे। खून और आंतें कट-कट कर गिरने लगीं। ऐसी भयंकर अवस्था होने पर भी महाराज जी अत्यन्त शान्त और धैर्य से रहे। अपने इस घोरतम कष्ट को इस प्रकार सहन करते थे कि मुख से एक बार भी हाय ! वा अन्य कष्टसूचक शब्द न निकलता था। महाराज बड़ी सावधानता से रहे और बातचीत करते रहे।

मृत्यु के समय पर किसी प्रकार के शोक वा घबराहट के चिह्न न थे। उस दिन शौच के पश्चात् स्वयं पानी लिया, हाथ धोए और दातौन की। पुनः पलंग पर कुछ देर बैठकर लेट गये। श्वास बड़े वेग से चल रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि महाराज श्वास रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं। किसी ने पूछा आपका चित्त कैसा है ? तब कहा कि अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है। लाला जीवनदास ने पूछा, आप कहां हैं ? तब कहा कि ईश्वरेच्छा में। महाराज ने पक्ष तिथि और वार पूछा। किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि, अमावस्या और मंगलवार है। यह सुनकर छत और दीवारों की

ओर दृष्टि की। पुनः कई वेदमन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वरोपासना की और भाषा में ईश्वर का गुणकीर्त्तन किया और फिर बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे।

उस समय उसके स्वर्णाभ मुखमण्डल के चारों ओर सुप्रसन्न प्रभात की झिलमिलाहट पूर्णरूप से झिलमिल कर रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि जिस शिव की खोज वा प्राप्ति के लिए बाल्य-काल में धन धान्य से परिपूर्ण घरबार को छोड़कर आये थे, आज उसी महादेव के साक्षात् दर्शन कर कृतकृत्य हो ऋषिवर हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे। इस प्रकार कुछ देर समाधिस्थ होकर आँखें खोल दीं और यों कहने लगे "हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तूने अच्छी लीला की।"

महाराज उस समय सीधे लेट रहे थे। यह शब्द कहकर उन्होंने स्वयं ही करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोककर एक दम बाहर निकाल दिया। महाराज की मानवी लीला समाप्त हुई। उनका आत्मा नश्वर देह को छोड़कर जगज्जननी की प्रेममयी गोद में जा विराजा।

महाराज के मृत्यु दृश्य को पण्डित गुरुदत्त चुपचाप खड़े हुए देख रहे थे। वह यद्यपि आर्यसमाज के सभासद थे, परन्तु ईश्वर के अस्तित्व में उनको सन्देह था। उन्होंने देखा कि एक योगी और ईश्वर का सच्चा विश्वासी मृत्यु पर कैसे विजय पा सकता है। इस दृश्य को देखकर उनके सारे सन्देह दूर होगयें, जो उस समय तक किसी युक्ति से दूर न हुए थे और वह सच्चे आस्तिक बन गये।

कविरत्न आचार्य मेधाव्रत जी ने इन्हीं भावों को कुछ श्लोकों द्वारा कितने सुन्दर ढंग से प्रकट किया है—

अतिदारुणदेहदुर्दशास्वपि शान्तस्य महात्मनो मुखात् ।
मुदिताद् विजितेन्दुमण्डलान्मधुरं मन्त्रजगीतममृतम् ॥६७॥
स निपीय निजश्रव:पुटैर्भगवद्भाविसुभक्तमण्डनः ।
गुरुदत्तबुधोऽतिनास्तिको गुरुदेवात्मबलेन विस्मितः ॥६८॥
परमं पदमेष्यतो यतेः प्रभुभक्तिपरमां विलोक्य ताम् ।
स्वमनोमुकुरं शिवास्तिता-द्युतिभिर्दीपितमन्वभूदरम् ॥६९॥
(दयानन्ददिग्विजय । सर्ग-२७)

देह की अति भयंकर दुर्दशा में भी शान्तशील महात्मा के चन्द्रमण्डलविजयी प्रसन्न मुख से निकलते हुए मधुर मन्त्रगीतामृत को अपने कर्णपुटों से पीकर भगवान् के भावी भक्तशिरोमणि अतिनास्तिक पण्डित श्री गुरुदत्त जी गुरुदेव के आत्म-बल को देखकर आश्चर्यसागर में डूब गये ॥६७-६८॥

परमपद को पधारनेवाले योगीश्वर की परम प्रभुभक्ति को देखकर गुरुदत्त का चित्तदर्पण सृष्टिकर्त्ता प्रभु की विद्यमानता की प्रभा से अत्यन्त प्रकाशित होगया अर्थात् वे आस्तिक बन गये ॥६९॥

एक हिन्दी के कवि ने महर्षि की ईश्वर-भक्ति की प्रशंसा में निम्न शब्द कहे हैं—

"भक्तिरस में दयानन्द ऐसे बहे ।
पूर्ण जन्म अहिंसक ब्रह्मचारी रहे ।
धर्म-जाति के हित लाखों संकट सहे ।
मरते दम भी ये वचन मुख से कहे ।
तेरी इच्छा हो पूर्ण ऐ प्यारे प्रभु ।
ओं भूः ओं भूः ओं भूः ओं भूः ॥"

इस युग के विधाता आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के विषय में ईश-भक्ति और संध्योपासना सम्बन्धी इन उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि ईश-भक्ति वा संध्यावन्दन ब्रह्मचारी के प्राण हैं। संध्यावन्दन की प्रणाली इस देश में आदिसृष्टि से चली आई है।

संध्या के विषय में मनु जी ने कहा है—

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च ।९४।

(मनु० अध्याय ४)

ऋषि लोग चिरकाल तक संध्यावन्दन करने के कारण दीर्घायु सुबुद्धि, यश, सुकीर्ति और निश्चय करके ब्रह्मतेज को प्राप्त हुए हैं।

इसलिए जो उक्त कर्मों का विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है वह भी दीर्घायु आदि को प्राप्त होता है।

हमारे प्राचीन पुरुषा के संध्या के महत्व को भलीभांति समझते थे। इसलिए सब नित्यकर्मों में उन्होंने संध्या को सर्वोच्च स्थान दिया था। वे अत्यन्त आवश्यक कार्यों को भी छोड़कर संध्यावन्दन आदि किया करते थे। बाल्मीकि रामायण और महाभारत में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं—

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ।१।

(बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, षष्ठ सर्ग)

पुरोहित (वशिष्ठ जी) के चले जाने के पश्चात् रामचन्द्र जी ने अपनी धर्मपत्नी विशालाक्षी सीता के साथ स्नान किया और (दोनों स्नान कर) शुद्ध मन से नारायण के संध्योपासन में लग गयें।

तत्र शृण्वन् सुखा वाचः सूतमागधवन्दिनाम् ।
पूर्वां संध्यामुपासीनो जजाप यतमानसः ।३।

(बाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, षष्ठ सर्ग)

(राम और सीता दोनों) सूत मागध और वन्दीजनों की सुखदायक वाणियों को सुनते हुए प्रातः संध्योपासन कर एकाग्रचित्त से गायत्री का जप करने लगे ।

संध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ।५०।
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतलजलां नदीम् ।५१।

(बाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड, १४ सर्ग)

संध्याकाल में मनवाली, श्यामवर्णवाली, वरवर्णिनी सीता इस शुभ (सुन्दर) जलवाली नदी पर अवश्य ही आयेगी ।५०।

यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीती है तो वह अवश्य ही इस शीतल जलवाली नदी पर आयेगी ।

महाभारत में बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को दीर्घायु प्राप्ति के साधन बतलाते हुए कहा है—

ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ।
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः ।।

(अनुशासन० अ० १०४ श्लोक १८)

नित्य प्रति संध्या करने से ऋषियों ने दीर्घ आयु प्राप्त की । इसलिए प्रातःकाल और सायंकाल वाग्यत (मौन) होकर संध्या करनी चाहिये ।

अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद् दन्तधावनम् ।
अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत्कदाचन ।।

(महाभारत० अनु० अ० १०४ श्लोक ४५)

दातौन किए बिना देवपूजा अर्थात् संध्या न करे और संध्या किए बिना कहीं इधर उधर अपने कार्यों को करने के लिए न जावे।

संध्या पापों से हटाकर मनुष्य को धर्म की ओर ले जाती है। इस पर उनकी अटल श्रद्धा थी। जिसको मनु जी महाराज ने इस प्रकार प्रकट किया है—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥

(मनु० अध्याय २ श्लोक १०२)

प्रातःकाल की संध्या वा गायत्री का जप करता हुआ मनुष्य रात्रिभर के पापों का नाश करता है और सायंकाल की संध्या वा जप करता हुआ दिन के मलिन संस्कारों (पापों) का नाश करता है अर्थात् पाप करने की इच्छा नष्ट हो जाती है।

महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"प्रत्येक दिन पवित्रता के लिए हृदय से की गई प्रार्थना उत्तरोत्तर पवित्र बनाती है।"

जिस प्रकार निवास स्थान की शुद्धि प्रतिदिन सायं-प्रातः झाड़ू लगाकर वा जल से धोकर की जाती है इसी प्रकार मनुष्य के हृदय-मन्दिर को भी शुद्ध करना आवश्यक है जिस को कुसंस्कार दूषित करते रहते हैं। इन मलिन संस्कारों के कूड़े-कर्कट को प्रातः और सायंकाल की संध्या रूपी झाड़ू वा जल से धोकर शुद्ध करना आवश्यक हैं। जिस प्रकार मलिन वस्त्रों को साबुन से धोकर शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार अन्तःकरण रूपी वस्त्र पर जमे हुए काम, क्रोध, राग, द्वेष रूपी मल को दूर करने के लिए संध्या रूपी साबुन की आवश्यकता है। जिस प्रकार प्रातःकाल का किया हुआ भोजन हमें सायंकाल तक कार्य करने की शक्ति देता है और सायं-काल का भोजन रात भर के लिए शक्ति प्रदान करता है, उसी

प्रकार प्रातःकाल का किया हुआ संध्या-भजन वा ईश्वर-चिन्तन सायंकाल तक बुरे विचारों तथा पापों से बचाता है और सायंकाल की हुई ईश्वरोपासना रात्रि भर पापों और गन्दे विचारों तथा स्वप्नों से बचाती है। जिस प्रकार हम अपने माता-पिता वा गुरु के सम्मुख भय वा लज्जा के कारण चोरी और व्यभिचारादि पाप कर्म नहीं करते, उसी प्रकार पिताओं के पिता, माताओं की माता और गुरुओं का गुरु सर्वद्रष्टा 'ओ३म्' है। जिससे छिपकर हम कुछ भी नहीं कर सकते। जो हमारे कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में देता है। यदि हमें उसका ध्यान हो तो हम कैसे पाप कर सकते हैं? हम उसे भूल जाते हैं तभी पाप पंक में फंसते हैं, किन्तु वह हमें नहीं भूलता। हम भले ही उसे न देख सकें, किन्तु वह अन्दर बैठा-बैठा हमें बार-बार सन्मार्ग पर चलने के लिए सचेत करता रहता है। इतना ही नहीं, जब कभी हमारे मन में पाप करने की प्रवृत्ति होती है, तब वह हमें अन्दर से बार-बार टोकता और रोकता है। हम यह अनुभव भी करते हैं, किन्तु प्रभु की चेतावनी को अनसुनी कर देते हैं। जब हम अच्छे कार्य करने लगते हैं उस समय हमें वह शुभ कर्म करने के लिए उत्साहित भी करता है।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—

जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

(सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास)

किन्तु हम अपने ऐसे सच्चे रक्षक की भी नहीं सुनते और पाप वा कुमार्ग की ओर चलते रहते हैं, उसका भी रक्षा का हाथ हमारे सिर पर से उठ जाता है क्योंकि वह पापी का रक्षक वा साथी नहीं। "इन्द्रः इच्चरतः सखा" ऐश्वर्यशाली इन्द्र भगवान् पुरुषार्थी का साथी है. "मा मर्त्यस्य मायिनः" कपटी, छली, दुष्ट का साथी नहीं। वह अनाथों का भी नाथ है, निराशों की आशा है। मनुष्य को इसे किसी अवस्था में भी नहीं भूलना चाहिए। भूलनेवाले की अपनी ही हानि है। अपने कल्याण और स्वार्थ के लिए भी प्रातः सायं यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक उसका स्मरण करता रहे तो फिर किस लिए दुःख और क्लेश भोगने पड़ें।

इसी भावना को यह दोहा प्रकट करता है—

दुखः में सुमरण सब करें—सुख में करे ना कोय।
जो सुख में सुमरण करे—तब दुःख काहे को होय॥

ईश उपासना के विना मनुष्य को सुख भी नहीं होता और वह कृतघ्न और पापी भी होता है।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—

"जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिए दे रखे हैं उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।" (सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास)

सन्ध्या न करने पर दण्ड

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।
(मनु० अध्याय २ श्लोक १०३)

जो द्विज(ब्रह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) प्रातः सन्ध्या नहीं करता और सायंकाल को भी सन्ध्योपासना नहीं करता उसको सब द्विजकर्मों से शूद्र के तुल्य बाहर कर देना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार शूद्र को द्विजों के यज्ञादि कर्मों में अधिकार नहीं इसी प्रकार वह भी शूद्रवत् होने से शुभ कर्मों में सम्मिलित होने का पात्र नहीं।

इसीलिए ऋषियों ने 'नैत्यिके नास्त्यनध्यायः" नित्यकर्मों में अनध्याय (छुट्टी) नहीं होता अर्थात् सन्ध्या और अग्निहोत्र (हवन) आदि नित्य कर्म ब्रह्मचारी को अनिवार्य रूप से करने होते हैं।

महर्षि दयानन्द का कथन है-कि दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ| जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा, संग करना, परन्तु ब्रह्मचर्य में ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।" (सत्यार्थप्रकाश समु० ३)

ब्रह्मचारी को ईश्वर भक्ति की क्यों आवश्यकता है ?

इस विषय में महात्मा गांधी जी लिखते हैं—

"याद रखिये ! प्राणी मात्र की सेवा करने और इस प्रकार ईश्वर की महत्ता और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए मनुष्य परमात्मा का प्रतिनिधि है।"

" सदा उस अदृश्य शक्ति का विचार करो जिसे चाहे हम कभी भी न देख सकें तब भी हम अपने अन्दर रखवाली करते और प्रत्येक अपवित्र विचार को टोकते अनुभव करते हैं। फिर आप देखेंगे कि वह शक्ति सदा आप की सहायता कर रही है।"

"जब आपकी विषय-वासनायें आपको धर दबोचने की धमकी दें तब आप अपने घुटनों के बल बैठ जायें और परमात्मा से सहायता के लिए पुकार लगायें। ईश्वर का नाम हमारा अमोघ

सहायक है। सहायता के लिए ठंडे पानी से भरे हुए टब में अपनी टांगें बाहर निकाल कर लेटना चाहिये। ऐसा करने आपकी विषय वासनाएं समाप्त होती दिखाई देंगी।"

"मुझे विश्वास होता है कि अपने को पूर्णरूप से ईश्वरार्पण किये बिना विचारों पर पूरी विजय कभी नहीं मिल सकती।"

"समस्त धर्म-पुस्तकों में मैंने ऐसे वचन पढ़े हैं और अपने ब्रह्मचर्य के सूक्ष्मतम पालन के प्रयत्न में मैं उनकी सत्यता का अनुभव भी कर रहा हूँ।"

पूर्णतया मेरी समझ में केवल प्रभु प्रसादी है और इसलिए भक्त लोग अपनी तपश्चर्या से पवित्र करके गायत्री आदि मंत्र हमारे लिए छोड़ गये हैं।

ब्रह्मचर्य के सोलह आने पालन का अर्थ है ब्रह्मदर्शन। यह अर्थ मेरे सामने धीरे-धीरे सिद्ध होता गया। उससे सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र-वचन मैंने बाद में पढ़े। यह असिधारा व्रत है, निरन्तर जागरूकता की आवश्यकता देखता हूं। ईश्वर-दर्शन के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत अनिवार्य है ब्रह्मचर्य के आकांक्षी की प्रार्थना अन्तिम चरण है किन्तु उपादेयता में यह किसी से कम नहीं है। प्रत्येक दिन ब्रह्मचारी को पूरे मन से ईश्वर का नाम जपना चाहिए और ईश्वरीय कृपा मांगनी चाहिये।

पाशवी कामलिप्सा के संयम में हमारा सबसे अधिक शक्तिशाली सहायक ईश्वर का नाम है।

जो मन्त्र भावे वही भजा जावे। मैंने ईश्वर के एक नाम का संकेत किया है। जो भी मन्त्र चुना जाये उसमें पूर्णतया तन्मय हो जाना चाहिए। यदि दूसरे विचार जप को बीच में भंग करें तो इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि जो भी श्रद्धा से जप करता चला जायेगा वह अन्त में अवश्य जीतेगा। मन्त्र

जीवन की लकड़ी वन जाता है और अपने जपनेवाले को प्रत्येक परीक्षा में से निकाल ले जाता है। यह ध्यान रहे कि मन्त्र को तोते की तरह न रटना चाहिए। अपनी आत्मा उसके अन्दर प्रवेश करा देनी चाहिए। तोता ऐसे मन्त्रों को मशीन की नाईं रटता है। हमें चाहिए कि अवांछनीय विचारों को बाहर करने की आशा में —...पूर्ण श्रद्धा रखकर उनका जप करें।"

संध्या के अतिरिक्त यदि कोई ब्रह्मचारी जप में अधिक समय लगाना चाहे तो गायत्री मन्त्र वा प्रणव अर्थात् ओ३म् का जाप करना चाहिए। यही सर्वमान्य प्राचीन शास्त्रीय पद्धति है जिसे ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त सब ऋषि-महर्षि मानते हैं।

श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य परमविद्वान् श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज आदर्श ब्रह्मचारी और अपने समय के अद्वितीय पंडित थे। व्याकरण के तो वे सूर्य कहलाते थे। इन्हीं की कृपा से इनके शिष्य प्रातः स्मरणीय स्वामी दयानन्द पूर्ण विद्वान्, पूर्ण योगी तथा पूर्ण ब्रह्मचारी बने। जो आगे चलकर पतित भारत के भाग्य-विधाता और विश्व के सुधारकों के शिरोमणि कहलाए। उस महापुरुष स्वामी विरजानन्द जी महाराज के विषय में स्वाध्यायशील व्यक्ति जानते हैं कि विरजानन्द बाल्यकाल से अन्धे थे। उनके पाँच वर्ष की आयु में दोनों चक्षुरत्न जाते रहे थे। पुनः वे इतने ऊँचे महात्मा और विद्वान् कैसे बने? वे चौदह वर्ष की आयु में गृहत्याग कर मार्ग में अनेक कष्ट सहते हुए ऋषिकेश पहुँच गये। यह स्थान बहुत काल से ही पुण्यप्रद पवित्र स्थान माना जाता है। उनको उपनयन (जनेऊ) संस्कार के समय गायत्री की दीक्षा दी गई थी। यह सुना था "कि पवित्र गायत्री मन्त्र की सिद्धि के बल से मनुष्य ईश्वर तक का साक्षात् दर्शन कर सकता है।" बालक के सरल हृदय पर यह अमिट छाप लग गई और उसको इसका दृढ़ निश्चय

हो गया। इसी कारण ऋषिकेश में आकर उसने एकमात्र गायत्री का अवलम्बन(आश्रय) किया और अनन्यचित्त होकर वह श्रद्धापूर्वक गायत्री का जप करने लगा। प्रातःकाल, सायंकाल, यहां तक कि कभी-कभी रात्रि के मध्य में भी वह गायत्री की सिद्धि में लगे रहने लगे। इस के अतिरिक्त प्रातःकाल स्नान के पश्चात् गंगा के निर्मल जल में कण्ठ तक निमज्जित होकर बहुत देर तक वे गायत्री का जप किया करते थे। जप में ब्रह्मचारी विरजानन्द की ऐसी दृढ़ता देखकर ऋषिकेश के लोग आश्चर्यान्वित होगये और यदि सब नहीं तो अधिकतर ऐसी बातें कहने लगे-कि यह तरुण तपस्वी बुद्धि वा देवजन स्पृहणीय किसी दुर्लभ वर की प्राप्ति के लिए ऐसा उग्र तप कर रहा है।

उस समय का ऋषिकेश इस समय के ऋषिकेश के समान निरापद नहीं था। समय-समय पर वन के पशुवों उपद्रव के कारण वहां के निवासियों को कष्ट होता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि जंगली पशु रात्रि में आकर विरजानन्द की छोटीसी कुटिया को तोड़ जाते थे। ऋषिकेश निवासी विरजानन्द प्रायः फल-मूल खाकर ही दिन बिताते थे। कभी-कभी मन्दिर वा क्षेत्र में जाकर भोजन कर आते थे। परन्तु इस प्रकार के विघ्न और वाधाओं के होते हुए भी विरजानन्द एक दिन के लिए भी अपने लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं हुए वह अपने संकल्प पर दृढ़ और स्वावलम्बित साधना पर अविचलित रहकर बहुत दिन काल-यापन करते रहे। उन्हें जब इस प्रकार रहते हुये कुछ दिन बीत गये तो अकस्मात् एक दैवी घटना उपस्थित हो गई। विरजानन्द रात्रि में सोये हुए थे, सोते-सोते उन्हें एकदम यह शब्द सुनाई दिये—

"तुम्हारा जो कुछ होना था वह हो चुका, अब तुम यहां से चले जाओ।

इन शब्दों के सुनते ही विरजानन्द की निद्रा भंग हो गई और एक भयभीत मनुष्य की नाईं उठकर इधर-उधर ढूंढने लगे। थोड़ी ही देर में उन्हें मालूम होगया कि उनके पास वा उनकी कुटिया में कोई मनुष्य नहीं है और कोई था भी नहीं। उन्होंने इन सुने हुए शब्दों को दैव वाणी करके ग्रहण किया और जितने वार भी उस वाणी पर विचार किया उतने बार वह चिन्तित हुये।

अस्तु, ऋषिकेश छोड़ने के लिए ही उन्हें यह दैवाज्ञा हुई है यह समझकर उन्होंने ऋषिकेश छोड़ने में विलम्ब नहीं किया। कनखल में पूर्णाश्रम जी विद्या में और वैराग्य में पूर्ण थे, उनसे संन्यास लिया, कुछ दिन तक उनसे अध्ययन भी किया। अन्यत्र भी इसी प्रकार अध्ययन करते रहे, साथ-साथ पढ़ाने का भी काम करते रहे।

पाठक ! आश्चर्य करेंगे कि वे चक्षुहीन होते हुये किस प्रकार पढ़े। विरजानन्द ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य के प्रभाव और गायत्री की सिद्धि से उनकी स्मृति, धारणाशक्ति उज्ज्वलतर हो गई थी। वाह्य चक्षु भले ही बन्द थे किन्तु भीतर के प्रज्ञाचक्षु खुल गये थे इसलिए ये प्रज्ञाचक्षु कहलाते थे। विशेषतया गायत्री मन्त्र की सिद्धि के कारण वे धारणावती मेधाबुद्धि के धनी हो गये थे।

गायत्री मन्त्र के जप का विशेषफल ही स्मरणशक्ति की प्रखरता और बुद्धि की कुशाग्रता है। इसी के फलस्वरूप प्रियतम प्रभु ने ये दोनों शक्तियां अपने प्रियपुत्र विरजानन्द को प्रदान कीं। इन्हीं शक्तियों के बलबूते पर स्वामी विरजानन्द ने अन्धे होते हुए भी संसार के अविद्यान्धकार को छिन्न-भिन्न कर डाला। यह सब गुरुमन्त्र के गुणगान और जप का ही फल समझना चाहिए।

यह मन्त्र पुस्तक के आरम्भ में अर्थसहित पाठकों की सुविधा के लिए दे दिया गया है। वहां से कण्ठस्थ कर श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन

जप करके लाभ उठावें। इस मन्त्र का छन्द गायत्री है, इसलिए इसका नाम गायत्री पड़ गया है। इस मन्त्र का देवता (विषय) सविता है इसलिए इसे सावित्री भी कहते हैं। बालक को वेद अधिकार देने के लिए आचार्य वा गुरु सर्वप्रथम इस मन्त्र का उपदेश देते थे, इसलिए यह मन्त्र गुरुमन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह मन्त्र वेदों के सब मन्त्रों में शिरोमणि माना गया है। जो इस विषय में अधिक जानना चाहें वे महर्षि दयानन्द जी कृत सत्यार्थ-प्रकाश आदि ग्रन्थ तथा स्वामी वेदानन्द जी कृत सावित्री-प्रकाश पढ़कर लाभ उठावें।

इसी प्रकार प्रणव (ओ३म्) के जप का भी महत्त्व है। वैसे तो परमात्मा के अनन्त गुण और कर्मों के कारण नाम भी अनन्त हैं। बहुत से तो ऐसे नाम हैं, जो परमात्मा के भी हैं और अन्य पदार्थों के भी। जैसे- न्यायकारी और दयालु परमात्मा के नाम हैं, किन्तु न्याय करनेवाला और दया करनेवाला मनुष्य भी न्यायकारी और दयालु कहलाता है। ओ३म् एक ऐसा नाम है जो परमात्मा को छोड़कर और किसी का नाम नहीं।

"तस्य वाचकः प्रणवः" से यह सिद्ध किया जा चुका है कि जप करने के लिए तो केवल ओ३म् नाम का ही प्रयोग करना चाहिए वेदादि शास्त्रों में परमात्मा का मुख्य नाम ओ३म् ही बताया गया है। हमारे प्राचीन पुरुषा ऋषि-महर्षि सभी जप के लिए ओ३म् नाम का ही अनुष्ठान और इसी का व्यवहार और प्रचार करते आये हैं।

पौराणिक युग में धर्म के ठेकेदारों ने अवतारवाद को सिद्ध करने और प्रचार करने के लिए राम कृष्ण आदि; जो हमारे महापुरुषों के नाम थे, वे ही परमात्मा बना डाले और उनका खूब

प्रचार किया और उन्हीं नामों से दीक्षा भी देने लगे। उसी भ्रम में पड़े हुए साम्प्रदायिक लोग आज भी राम नाम आदि का कीर्तन और जप करते हैं। यही प्रभाव महात्मा गांधी आदि आधुनिक नेताओं पर भी पड़ा है और इसी कारण राम नाम आदि के जप का प्रचार करते रहे हैं।

पाठक! भ्रम में न पड़ जायें, इसलिए मैंने उनके ईश्वर-भक्ति सम्बधी जिन उद्धरणों में ओ३म् वा ईश्वर नाम का बार-बार प्रयोग किया है वह उनके आशय के अनुकूल ही है।

ओ३म् नाम में सबसे बड़ी एक विशेषता यह है। जैसे—एक मनुष्य जन्म से मूक (गूंगा) उत्पन्न हुआ है वह दीन मनुष्य तन पाकर भी गोड, अल्लाह, राम, कृष्ण, ईश्वर आदि नामों के द्वारा भगवान् का भजन नहीं कर सकता। क्योंकि वह उनका उच्चारण करने में असमर्थ है। तो फिर क्या वह इच्छा होने पर भी ईश भजन से वञ्चित ही रहेगा? नहीं! नहीं!! परमात्मा का ओ३म् नाम एक ऐसा नाम है जिसे गूंगा भी बोल सकता है। इसलिए भगवान् का निज नाम ओ३म् ही है। इसके सिद्ध करने में यह प्रबल और अकाट्य युक्ति है।

ओ३म् के सर्वव्यापक, रक्षक, सर्वज्ञ, पापनाशक, सर्वशक्तिमान् आदि अनेक अर्थ हैं। ऐसा सुन्दर मधुर, संक्षिप्त बहुत अर्थों वाला गम्भीर नाम भगवान् का अन्य किसी भी भाषा में नहीं है। वेद ने भी ओ३म् के जप के लिए आदेश दिया है—

"ओं क्रतो स्मर, क्लिवे स्मर" इत्यादि।

हे कर्मशील जीव! तू अपने कल्याण के लिए ओ३म् का स्मरण कर। ऋषि मुनियों ने भी इसीलिए ओ३म् के जप पर बहुत बल दिया है। मैं पहले लिख चुका हूं कि महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन

में ओ३म् के जप को ब्रह्मदर्शन का एक साधन मानते हैं।

गोपथ ब्राह्मण में भी आया है कि 'अमृतं वै प्रणवः' ओ३म् अमृत अर्थात् जीवन है "अमृतेनैव तन्मृत्युं तरति" अमृत अर्थात् जीवन के द्वारा मनुष्य मृत्यु को पार करता है।

सार यह है— जन्म मरण के चक्र से निकलने के लिए ओ३म् एक प्रबल सहारा है। ब्रह्मचर्य पालन के लिए ओ३म् जैसे परम सहायक को छोड़कर एक सच्चा ब्रह्मचारी इधर उधर कैसे भटक सकता है। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्यप्रेमी वा ब्रह्मचारी को सदैव इस ब्रह्मचारी ओ३म् की छत्रछाया वा शरण में निवास करना चाहिए, जिससे किसी प्रकार की विघ्न बाधाओं का भय वा आशंका ही न रहे और ब्रह्मचर्य का यह कठोर तपस्यामय असिधारा व्रत सरल और अत्यन्त सुगम होजाये और इसके लिए तपश्चर्या करता हुआ यह अनुभव करने लगे कि वह ब्रह्मचर्य रूपी अमृत रस को खूब घूट-घूट कर और आनन्द ले ले कर पी रहा है अर्थात् उसकी तपश्चर्या रसमय बन जाये। यह सब कुछ सम्भव है, किन्तु सच्ची लग्न और श्रद्धा चाहिए। सच्ची लग्न वाले श्रद्धालु ब्रह्मचारी के आगे उस परम दयालु ओ३म् की कृपा से विघ्न बाधायें आती ही नहीं। यदि किन्हीं पुराने संस्कारों के कारण कामवासना का अंकुर मुख दिखाने लगता है तो सहस्रों हाथों से रक्षा करनेवाला परम दयालु ओ३म् उसी समय उस काम रूपी अंकुर की ग्रीवा को तोड़-मरोड़ कर इतिश्री कर डालता है।

इसी भाव को एक दोहा अच्छी प्रकार से स्पष्ट करता है। इस दोहे को पूज्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज, जो गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक नैष्ठिक ब्रह्मचारी वीतराग आर्यसंन्यासी और गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के आचार्य हैं व्रत के धनी और ब्रह्मचर्य के अद्वितीय

प्रचारक हैं, वे अपने व्याख्यानों में खूब झूम-घूम कर और आनन्द लेकर गाया करते हैं। बालकों और युवकों को याद कराया और सिखाया करते हैं। उनका वह प्रिय दोहा यह है—

विषय का विषधर जब डसे ओ३म् जड़ी को ले चबा।
है नाग दमन यह औषधि ढूंढन दूर न जा ॥

विषय रूपी नाग (सर्प) जब डसता वा काटता है तो इस विषैले नाग के विष का दमन करने के लिए, उस समय इस सर्प विष को दूर करने वाली ओ३म् रूपी नागदमन बूंटी का सेवन करना चाहिए और वह बूंटी 'तद्वन्तिके' तेरे अत्यन्त निकट है उसे ढूंढने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं।

पर्वतों में एक विच्छू के समान काटने जैसी भयङ्कर पीड़ा वाली बूंटी होती है। किन्तु उसी बूंटी की जड़ में ही एक दूसरी बूंटी होती है उसको छूने से वह पीड़ा तुरन्त ही दूर हो जाती है। वहां रहनेवाले लोग इसे भली भांति जानते हैं। इसी प्रकार जिस दूषित मन में दुष्ट-विचार वा काम-विकार का उद्भव वा उत्पत्ति होती है वहीं इस पाप विनाशक ओ३म् का निवास है। क्योंकि हमारा शरीर, मन और आत्मा ही क्या, यह सारा संसार ही सर्व-व्यापक ओ३म् से ओत-प्रोत है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

(यजु० अध्याय ४० मन्त्र ४)

यह संसार के प्रत्येक पदार्थ के अन्दर बाहर विद्यमान है। "जहां पर तेरा नहीं निवास ऐसी कोई ठोर नहीं है।" इसलिए विद्वान् योगिजन बाहर उसकी खोज त्यागकर समाधि के द्वारा उसके अपने अन्दर ही दर्शन करते हैं। इसी प्रकार ऐसा विकट समय आने पर ब्रह्मचारी को ईश्वरचिन्तन में लग जाना चाहिए

और प्राणायाम करते हुए ओ३म् का जप करना चाहिए। कामरिपु का वध करने के लिए यह अमोघ अस्त्र है और कामरिपु का सर्वथा दमन करने के लिए ही प्रातः सायं सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्म का करना ब्रह्मचारी क्या सभी आश्रमवासियों के लिए अनिवार्य समझा गया है।

एक श्लोक जिसको आर्यसमाज के विद्वान् उपदेशक पं० सुरेन्द्र शर्मा जी गौर अपने व्याख्यानों में बहुधा सुनाया करते हैं। उन्हीं की कृपा से मुझे यह प्राप्त हुआ है—

शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं, कोटीं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

ग्रामों में भी इसी प्रकार की लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

सौ काम छोड़कर खा, हजार काम छोड़कर नहा।
लाख काम छोड़कर दान दिया कर,
करोड़ काम छोड़कर प्रभु ध्यान किया कर॥

इस प्रकार भोजन से स्नान आवश्यक और इन दोनों से दान और दान से भी ईश्वर का ध्यान आवश्यक है। किसी विशेष अवस्था में अन्न वा जल के न मिलने पर अथवा रोग के कारण स्नान और भोजन का अपने लिए त्याग किया जा सकता है, किन्तु ऐसी दशा में भी पात्र को दान देने की भावना और परोपकार की प्रवृत्ति को बनाये रखना विचारशील व्यक्ति का आवश्यक कर्तव्य है। दुर्भाग्यवश दरिद्रता में धन-धान्य के अभाव से मनुष्य किसी की दान द्वारा सहायता न भी कर सके किन्तु उपर्युक्त बाधायें ईश्वर-चिन्तन में बाधक नहीं। भूखा, प्यासा, दरिद्र, रोगी सब कोई किसी न किसी रूप में भगवद्भजन कर ही सकता है, केवल श्रद्धा और प्रभुप्रेम चाहिए, जिसमें एक कानी कौड़ी का भी व्यय नहीं। एक

करोड़ काम एक समय में किसी के पास नहीं होते। इनके छोड़ने का आशय यही है कि ईश्वर भजन से बढ़कर संसार में कोई आवश्यक कार्य नहीं है। इसलिपे ब्रह्मचारी क्या प्रत्येक कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को सदैव श्रद्धा पूर्वक सन्ध्योपासना करनी चाहिये।

किन्तु सन्ध्यौपासना विधिपूर्वक करने से पूर्ण लाभ होता है। इस की विधि विस्तार पूर्वक महर्षि दयानन्द कृत पञ्चमहायज्ञ-विधि, संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में दी है, वहां पढ़कर पूर्ण लाभ उठावें। इतना अवश्य ध्यान रखें कि बिना प्राणायाम के सन्ध्या अधूरी है। प्राणायाम करने से मनुष्य के मन आदि इन्द्रियों की मलीनता व चञ्चलता मिटकर निर्मलता और एकाग्रता प्राप्त होती है। जिससे सन्ध्या में खूब मन लगता और आनन्द आता है। इस-लिए सन्ध्या से पूर्व प्राणायाम अवश्य करें।

प्राणायाम की विधि

प्राणायाम की सामान्य विधि यह है:— शुद्ध देश और पवित्र आसन पर जिधर की वायु हो उधर की ओर मुख करके सिद्धासन लगाकर बैठ जावे। नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच (खींच) करके हृदय वा भीतर के वायु को बल से बाहर निकालकर यथाशक्ति बाहर ही रोक दें। पश्चात् शनैः शनैः भीतर वायु को लेकर वहां भी कुछ थोड़ा सा रोके। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करें। अथवा जितना सामर्थ्य और इच्छा हो उतना करें। नासिका को हाथ से न पकड़ें। जब घबराहट हो तो धीरे धीरे वायु को बाहर निकाल दें। और जब बाहर निकालना चाहें तब मूलेन्द्रिय (नाभि के नीचे के भाग) को ऊपर खींच रखें। इस प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता

है और यह क्रिया स्वप्नदोष आदि को दूर करने तथा ब्रह्मचर्यरक्षा में अत्यन्त सहायक है। प्राणायाम करते समय मन में ओ३म् का जप करता जाये अथवा प्राणायाम मन्त्र का मानसिक जप करे। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।

यह सदैव ध्यान रखें कि अपनी शक्ति के अनुसार सुखपूर्वक अन्दर और बाहर प्राण को रोकना चाहिए, बलपूर्वक अधिक देर रोकने से हानि होती है।

यही प्राणायाम की क्रिया सन्ध्या में जो प्राणायाममन्त्र आता है उसका जप करके करनी चाहिए। प्राणायाम की जो रीति दी है इस प्रकार कम से कम तीन और अधिक से अधिक इक्कीस प्राणायाम सन्ध्या के साथ करने चाहियें। यहां विधिपूर्वक सन्ध्या करने के लिए थोड़ासा प्राणायाम के विषय में लिख दिया है। ब्रह्मचर्य पालन की दृष्टि से प्राणायाम का विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसलिए इसका पृथक् ही एक भाग कर दिया है उसका स्वाध्याय करके लाभ उठायें।

जो मनुष्य अपने आचरण का सुधार नहीं करता और दिखाने के लिए सन्ध्या करता है वह दम्भी है। इस विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं "कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता है और अपना चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है"।

इसलिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह "जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न

जाने देवे, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रखे"।

आदर्श ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी की इस आज्ञा के अनुसार चलने से ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य नाश का कोई भय नहीं रहता और वह अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करने में सहज में ही समर्थ और सफल होता है। ब्रह्मचारी की ब्रह्मचर्य की शुभ और पवित्र प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करता है और फिर वह पूर्ण विद्वान्, बलवान् और आयुष्मान् होकर सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करता है।

हवन

जिस प्रकार सायं प्रात: दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासना करना आवश्यक है उसी प्रकार सबको अग्निहोत्र (हवन) भी दोनों समय नित्य करना चाहिए। इसकी विधि भी महर्षि दयानन्द जी कृत पंचमहायज्ञविधि और संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में लिखी है। उसके अनुसार नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके लाभ उठावें।

यह सब लोग जानते हैं कि हमारे शरीर से मल-मूत्र आदि के रूप में दूषित और दुर्गन्धयुक्त पदार्थ निकलते रहते हैं जो जल और वायु को दुर्गन्धयुक्त और दूषित कर देते हैं। जल वायु के बिगड़ने से रोगों की उत्पत्ति और रोगों से प्राणियों को दुःख होता है। इसी प्रकार चन्दन; घृत आदि सुगन्धित और पौष्टिक द्रव्य जो हवन के समय अग्नि में डाले जाते हैं वे पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्धि की निवृत्ति करते हैं और जल वायु के सुगन्धि होने से आरोग्य की वृद्धि और रोगों का नाश होता है, जिससे सब प्राणियों को सुख होता है। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ

नष्ट नहीं होता। क्योंकि जहां होता है वहां से दूर देश में खड़े हुये पुरुष को भी (नासिका से) सुगन्ध का ग्रहण होता है। पदार्थ विद्या जाननेवाले लोग इसे भलीभांति जानते हैं। अग्नि में भेदक शक्ति है। जब होम किया जाता है तो वह घर में ठहरी हुई वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हल्का करके घर से बाहर निकाल देता है और उसके स्थान पर पवित्र वायु का प्रवेश कराके रोगों के नाश और सुख की वृद्धि का कारण बनता है। घर में रक्खे हुये केसर कस्तूरी वा सुगन्धित पुष्पों के सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके। क्योंकि इसमें अग्नि के समान भेदक शक्ति नहीं है। जो मनुष्य होम नहीं करता वह पाप का भागी होता है। इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—

"क्यों कि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उस से अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख विशेष होता है। जितना घृत और सुगन्ध आदि पदार्थ एक मनुष्य खाता उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तमोत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इसके अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये, परन्तु उस से होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना आवश्यक है।" (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

हमारे पुरुषा प्राचीन काल से सन्ध्या के समान होम भी

प्रतिदिन सभी करते थे। वाल्मीकि रामायण में आता है—

द्रष्टुमशक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः॥

(बालकाण्ड, सप्तम सर्ग)

अयोध्या में अशिक्षित (अनपढ), नास्तिक (ईश्वर को न मनाने वाला), प्रतिदिन यज्ञ न करने वाला, नीच और चौर आदि ढूंढने पर भी नहीं मिलता था, वहां इनका दर्शन असम्भव था अर्थात् सभी ईश्वर के भक्त, आस्तिक, विद्वान् धर्मात्मा वा प्रतिदिन होम करनेवाले थे।

अश्वपति महाराज का राज्य भी इसी प्रकार का था। इन दो राज्यों की क्या बात है, सृष्टि से ले के महाभारत से कुछ काल पूर्व तक सारे भारतवर्ष की ऐसी ही अवस्था रही है।

सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इस से अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि राजे महाराजे लोगे बहुतसा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्य्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाये" (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

इसलिये सन्ध्या के समान होम भी ब्रह्मचारी को प्रतिदिन करना चाहिये क्योंकि होम के लिये शास्त्रों में अनध्याय (छुट्टी) करने की अनुमति नहीं है।

मुद्रक— वेदव्रत शास्त्री, आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक। फोन २८७४

स्वामी ओमानन्द की रचनाएँ

१ हयाणा के प्राचीन मुद्रांक — ५०१-००
२ वीरभूमि हरयाणा — ४-००
३ शेरशाह सूरी — -७५
४ वीर हेमू — -७५
५ मांस मनुष्य का भोजन नहीं — १-००
६ ब्रह्मचर्यामृत — -२५
७ बाल विवाह से हानियां — -२०
८ स्वप्नदोष चिकित्सा — -३०
९ बिच्छू विष चिकित्सा — -२०
१० पापों की जड़ (शराब) — -३५
११ हमारा शत्रु (तम्बाकू) — -३५
१२ नेत्र रक्षा — -३०
१३ व्यायाम का महत्त्व — -५०
१४ रामराज्य कैसे हो — -२०
१५ हरयाणा के वीर यौधेय — ७-००
१६ ब्रह्मचर्य के साधन १-२ भाग — -६०
१७ ब्रह्मचर्य के साधन ३ भाग (दन्त रक्षा) — -४०
१८ ब्रह्मचर्य के साधन ४ भाग (व्यायाम सन्देश) — १-५०
१९ ब्रह्मचर्य के साधन ५ भाग (स्नान, सन्ध्या, यज्ञ) — १-००
२० ब्रह्मचर्य के साधन ६ भाग (प्राणायाम) — [illegible]
२१ ब्रह्मचर्य के साधन ७-८ भाग (सत्संग, स्वाध्याय) — १-००
२२ ब्रह्मचर्य के साधन ९ भाग (भोजन) — १-५०
२३ ब्रह्मचर्य के साधन १० भाग (निद्रा) — -५०
२४ ब्रह्मचारी की मेखला (११ भाग) — -६०
२५ रूस में १५ दिन — -५०
२६ हरयाणा का संक्षिप्त इतिहास — -५०
२७ मेरी विदेश यात्रा — -७५
२८ जापान यात्रा — -७०
२९ शराब से सर्वनाश — -५०
३० काला पानी यात्रा — -६०
३१ घरेलू औषध हल्दी — -५०
३२ घरेलू औषध लवण — -५०
३३ घरेलू औषध अर्क (आक)

प्रकाशक :

हरयाणा साहित्य संस्थान,

पो० गुरुकुल झज्जर, रोहतक

भारत के प्राचीन मुद्रांक

लेखक—स्वामी ओ३मानन्द सरस्वती। मूल्य – ५०) रु०

इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ में भारत के प्राचीन प्रसिद्ध नगर कौशाम्बी, अहिच्छत्रा रोहीतक, प्रकृतानाकनगर सुनेत, स्रुघ्न आदि से प्राप्त प्राचीन मुद्रांकों (मोहरों) का सचित्र व्याख्यान किया गया है। हिन्दी भाषा में इस विषय का यह पहला ग्रन्थ है। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष तथा लाखों रुपये लगाकर यौधेय, वृष्णि, पाञ्चाल आदि गणराज्यों तथा मित्र, सोम, गुप्त, भद्र, देव और शर्म आदि कुलों के राजकीय और सेनापति, महासेनापति आदि के व्यक्तिगत हजारों मुद्रांक ढूंढ निकाले हैं। महाभारत के अनन्तर लुप्त हुए भारतीय प्राचीन इतिहास की टूटी कड़ियों को जोड़ने में ये मुद्रांक अपना विशेष स्थान रखते हैं। उन्हीं का विशद् वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है।

इसी भांति प्राचीन अस्त्र-शस्त्र, प्राचीन लक्षण स्थान (टकसाल) मृन्मूर्तियां, प्रस्तरमूर्तियां और मुद्रांकों के भी ग्रन्थ श्री स्वामी जी महाराज लिख रहे हैं। जो शीघ्र ही पाठकों के सम्मुख आयेंगे। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतियां प्रत्येक व्यक्ति, गुरुकुल, स्कूल और कालिजों के पुस्तकालयों को अवश्य रखनी चाहिएँ। जिससे भारत के प्राचीन गौरव की जानकारी हो सके।

प्रकाशक—
हरयाणा प्राचीन पुरातत्त्व संग्रहालय,
गुरुकुल झज्जर रोहतक (हरयाणा)
दूरभाष : ६४

केवल कवर पेज सैनी प्रिण्टर्स, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६